दो शब्द

समाज की विषम प्रणालियाँ जब जीवन को जलाती हैं तब शहर वासियों की रुखाई और स्वार्थ प्रेम उसे घी देकर और अधिक भड़काता है। कहने को तो हम कहते हैं कि हम सभ्य होते जा रहे हैं। पर सत्य तो यह है कि हमने अपनी आँखों पर पट्टी बांधी हुई है। क्योंकि हमारे सुख के दो चार साधन हैं, इसलिए हम सदा अपने वस्त्रों की ही सजावट देखते हैं, दुर्दिन के सताए फुटपाथों पर सोने वालों की ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता। कौन देखता है उनकी ओर? क्या है उनके पास जो कोई उनकी ओर ध्यान करे? वे बेचारे पैसे वाले तो हैं नहीं, जो उनके सिर दर्द की सूचना अखबारों में छपे, डाक्टर लोग हाथ में नब्ज पकड़े खड़े रहें और पत्रकार हाथ में कागज पैंसिल लिए उनसे स्वास्थ्य के विषय में प्रश्न करता रहे।

समाज का यह ज्वालामुखी जब नारी समाज पर टूटता है तो दिल की धड़कन बढ़ जाती है और आँखों से बहने वाले आँसू क्रोध के कारण खून के कतरे बन जाते हैं। नारी-समाज की जननी है। नारी के आञ्चल में हम रोए हैं—मुस्कराये हैं। हम उसकी पूजा करते हैं क्योंकि वह माँ है। हमने उसका दूध पिया है और उसकी लोरियों का आशीष पाकर हम इतने बड़े हुए हैं—नेता बने हैं, मिनिस्टर बने हैं-विश्व के अधिनायक बने हैं। हम नारी को प्यार करते हैं क्योंकि वह हमारी पत्नी है—हमारी बहिन है। इन्हीं दो रूपों की प्रेरणा ने मादक और पवित्र स्नेहिल सन्देश ने हमें विश्व का विराट् रूप निर्माण करने का प्रोत्साहन दिया। नारी ने हमारा पालन किया और हमने नारी को पुत्री समझकर पालने में झुलाया। इस भांति युगों की पारस्परिक

भावना ने नारी और पुरुष को एक रूप कर दिया। नारी पुरुष की पूजा बन गई और पुरुष नारी का प्राण! इतना होते हुए भी समाज ने नारी को उसके मातृ, पत्नि और पति-प्रेम के बदले चौपायों का साम्राज्य दिया। उसे अपने हाथों का खिलवाड़ बना लिया। चन्द चाँदी के टुकड़ों के बल पर समाज ने नारी से क्या नहीं लिया! उसका हृदय खरीदने का प्रयास किया, उसका सतीत्व खरीदकर उसके कोमल शरीर को काठ की पुतली समझ जैसे चाहा उठाया धरा। दुःख है—समाज घर में जिस की मूर्ति बनाकर पूजा करता है, ड्योढ़ी के बाहर उसी का नग्न रूप खड़ा करके अपनी वासना शान्त करता है।

इन्हीं भावनाओं ने लेखक को यह उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी। जहाँ तक मेरा मत है उपन्यास कला, भाव, कहानी और हृदय ग्राहकता के गुणों से अलंकृत है।

प्रकाशक

अन्तिम-साध

१

पी कहां···पी कहां··· पी कहां···

'पीय तो मेरे साथ सोये हैं, रजनी भी अपने प्रियतम चन्द्र के साथ विहार कर रही है। ऐसे समय में किसका पीय खो गया है? जो पागलों की भाँति पुकार रहा है। अब न पुकार पागल!' धीमे स्वर में मनोरमा ने कहा।

'रानी! यही तो वह पपीहा है जो अपनी कसक को जग के सम्मुख रखती जा रही है।'

'तो क्या असल में उसका पीय खो गया है?'

'निःसन्देह'।

'कहाँ?'

'प्रकृति के इस विहंसते यौवन में।'

'तो वह पागल क्यों रो रही है? उसे धीरज धरना चाहिए, पुनः मिल जायेंगे उसके पीय, हंस उठेगी उसकी जवानी। पथ का भटका राही पथ पर आ ही जाता है।'

'प्रेम में बुरी शंका होती है प्यारी।'

'तब यह क्या सोच रही है?'

'इसको शक है कि कहीं इसका पीय दूसरे खिले फूल पर न बैठ जाय।' अपने हाथों में उसकी हथेली को दबाते हुये ठाकुर साहब ने कहा।

'आप यह झूठ कहते हैं स्वामी!' बात बनाते हुये मनोरमा ने कहा।

ग़ज़ब हो जायगा, वाह रे तेरे आधे गाल की हंसी !'

'अच्छा, चुप रहिये।'

'अपनी दफा चुप होने की बात।'

'अब।' चतुर चितवन के साथ मनोरमा ने कहा।

'एक बात बताओ।'

'पूछिये मालिक।'

'रोओगी तो नहीं।'

'न रोऊंगी।'

'अगर पपीहा की तरह तुझे भी पीय को खोजना पड़े तो······'

टप···टप··टप···।

ठाकुर साहब की बाँहों पर आँसू की दो चार बून्दें टपक पड़ीं। चौंक कर बोल उठे—'आखिर रो ही दी न ?'

आप ऐसी अटपटी और अपशकुन की बातें क्यों करते हैं नाथ ! क्या मुझे दूसरा भी सहारा है।'

'ये आंसू कैसे ?'

दिल के बिखरे टुकड़े हैं राजा ! मनोरमा ठाकुर साहब से लिपटी हुई बोली।

'आखिर क्यों टूटा ?'

'आपकी बातों के कठोर आघात से।'

'बात का भी आघात !'

'बात का आघात तलवार से भी अधिक विषैला होता है स्वामी !'

मनोरमा मौन हो गई आज ठाकुर साहब की ऐसी बात सुनकर। उसका मानस अमंगल की लहरों में खेलने लगा। सोचने लगी—स्वामी जी के मुख से आज ऐसी बात क्यों निकली अवश्य भविष्य में कोई आशंका है।

घन···घन···घनघन।

रान · राम··राल··भगवान।

यह तारा भी टूट कर मेरी आँखों के सम्मुख पृथ्वी पर आ रहा है। भगवन् ! इस मेरी फुलवारी में आप क्या ग़ज़ब गिराना चाहते हैं ?

कुकड़ूँ कूँ....कुकड़ूँ कूँ....।

शायद चार बज गया। रात भी पीली हो चली है। नींद भी न आई। सामने पीपल के पेड़ पर चिड़ियाँ भी चहकने लगीं। स्वामी जी को कैसे जगाऊँ, ये तो मेरी जांघ पर ही सो गए हैं, मन ही मन मनोरमा ने सोचा।

हायरे राम...हाय जाने दे बाबू...जान गया...बचाओ।

मनोरमा डर गई स्वप्न में ठाकुर साहब की ऐसी पुकार सुनकर। अनायास ठाकुर साहब चौंक कर उठ बैठे मनोरमा के टपकते हुये आंसू को पोंछ कर बोले—

'क्यों रो रही हो प्यारी ?'

मनोरमा प्रभाहीन मुख से उसी भांति निश्चल और मौन थी।

कुछ भी तो बोल दुलारी ? उसकी बांहों को अपने गले पर रखते हुये ठाकुर साहब बोले।

'क्या कहूँ स्वामी'।

'भला कुछ, क्या कोई तकलीफ है ?'

तकलीफ नहीं नाथ ! अब तो कलेजे के ही दो टुकड़े हो गये।

'क्यों ?'

आपकी ऐसी दर्दभरी पुकार सुनकर !'

'वह तो स्वप्न था ?'

'स्वप्न नहीं सत्य।'

'सपना भी क्या सच्चा होता है।'

'प्रातः काल का सपना भी क्या झूठा होता है स्वामी !'

तुम पागल हो गई हो। व्यर्थ की शंका करके दुःखी हो जाती हो। ऐसी शंका स्वप्न में भी न करो दुलारी !

'वह तो सामने ही आवेगा स्वामी।'

'तुम्हें इतना विश्वास है स्वप्न पर ।'

मनोरमा से तो एक रोज पूर्व ही एक संन्यासी ने कहा था कि तेरा सौभाग्य लुट जायगा, थोड़े दिनों में भविष्य अन्धकारमय होगा ।

'मुर्गा बांग दे उठा ।'

क्या सवेरा हो गया । बदली में पता भी नहीं चलता क्या बजा ? आँखें मलते हुये ठाकुर साहब ने कहा ।

टिक···टिक···टिक··· ।

यह तो चार बजकर बीस मिनट हो गये अब उठना चाहिए ।

'आज आप बाहर न जाइये ।'

'क्यों प्यारी ।'

'कुछ ऐसी ही बात है ।'

'भला सुनूँ तो ।'

'नहीं ।'

'अच्छा' कहते हुए मुस्कराकर ठाकुर साहब बाहर चलने लगे ।

हाथ पकड़ कर मनोरमा रोने लगी ।

'क्या बात है ।'

कलेजा काँप रहा है, दाहिनी आँख फड़क रही है, प्राण !

नारी का कलेजा तो सदैव आशंका से काँपा करता है ।

शायद मुझे भविष्य में रोना होगा नाथ !

'कदापि नहीं, मेरे रहते ।'

मुझे कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है ।

'पागल हो गई है, उठ घर का काम काज देख ।'

ठाकुर साहब मन्द मुसकान के साथ कुन्दन के समान गाल चूमकर और नर्म छाती पर हाथ फेरते हुये मकान के बाहर चले आये ।

सुन्न···सुन्न···सुन्न··· ।

'पहुँचे यारों ! कहिए सरकार क्या आज्ञा है ?

'एक दर्शन दो ।'

बैलों को लाकर नांद पर बांध दे उन्हें अच्छी तरह चारा डाल कर खिला दे। देख सामने भैंस भी चिल्ला रही है, शायद उसके दूध देने का समय हो गया है। जा बाल्टी ला दूध दुह दूँ।

माँ···माँ···।

'क्या है मुन्नू।'

'बाल्टी चाहिए, पिताजी मांग रहे हैं।'

'वह सामने रक्खी है ले जा।'

'बाबूजी, चलिए अम्मा बुला रही हैं। जलपान करने का समय हो गया है।'

'चलो आ रहा हूँ।'

'आज का हलवा वैसा ही रसीला है जैसा तुम्हारा कुंदरु के समान गाल।'

'खाते पीते समय भी ऐसी बातें ?'

'रहा नहीं जाता।' दिल में उठे हूक तो सहा नहीं जाय।'

'इतने मतवाले हो गये हैं आप।'

'मतवाला नहीं दिवाना।'

मुन्नू मुन्नू··· मुन्नू···।

'हाँ सरकार।'

'देख दालान में ज़मींदार साहब का कारिन्दा बैठा है उससे कहदे चले, मैं आ रहा हूँ।'

'अच्छा।'

'प्राण दुलारी ! मैं तो ज़मींदार साहब की छावनी पर जा रहा हूँ घर का प्रबन्ध ठीक रखना किसी प्रकार गड़बड़ी न होने पावे।'

डबडबाती आँखों से मनोरमा ठाकुर साहब के मुख की ओर देखती रही, उसकी आँखों के एक कोने में आशंका बिलख रही थी, दूसरे में निराशा रो रही थी। शायद अन्तिम आँखें मिल रही हैं, असमंजस में मनोरमा ने मन में कहा।

× × ×

२

इसी प्रकार कलह के झपेड़ों में दस महीने बीत गए। भाई भाई में मुकदमेबाज़ी भी ज़ोरों से चल रही थी। एक दूसरे के खून के प्यासे थे। सम्पत्ति क्या नहीं कराती। संसार में सम्पत्ति ही भाग्य का निर्माण करने वाली और जीवन को मिट्टी में मिलानें वाली है। समय के अनुसार पाप और पुण्य-विधायिनी सम्पत्ति ही है।

'बच्ची !'

'माँ।'

'इधर आ।'

दूसरे कमरे से गुड़ियों को वैसी ही बिखरी छोड़ कर प्रभा दौड़ी हुई आकर बोली—

'क्या है मां।'

'बिटिया न जाने क्यों हमारी दाहिनी आँख फड़क रही है, जी में तरह तरह की बुरी भावनाएं उठ रही हैं, कलेजा भी कांप रहा है।'

'तबीयत तो ठीक है न मां?'

'ठीक है बच्ची।'

'तब।'

न जाने क्यों?

मां! दूल्हा सुसज्जित बारात के साथ अपनी ससुराल में पहुंचने ही वाला था कि तू ने पुकारा मैं उसी भांति सब को छोड़कर चली

आई हूँ। जाती हूँ अब ब्याह समाप्त होने पर आऊंगी। छोटी प्रभा हंसती हुई अपने कमरे में जाकर गुड़ियों के साथ खेलने लगी।

मनोरमा अपनी जगह पर निश्चल खड़ी थी, सोचती थी क्या होने वाला है? इसके पहले तो हमें स्वप्न में भी ऐसी ऐसी बुरी भावनाएं न उठती थीं। क्या कल की साधु की बतलाई बात सत्य हो ही जायगी। मुझ पर ग़ज़ब ढा जायगा, मेरा भाग्य लुट जायगा।

अम्मा…अम्मा…मुन्नू ने पुकारा।

क्या है? अनमने भाव से तरुणी ने कहा।

'जलपान करने का समय हो गया है ला दे।'

'देख ताख में दाना रक्खा है बर्तन में मीठा है पानी पी ले, मेरी तबीयत ठीक नहीं है।'

उठकर खिड़की से बाहर देखने लगी। ताकि उसके मन की बुरी भावनाएँ दूर हो जायं। खिड़की से आंच लग रही थी। कभी लू के झकोरे से व्याकुल होकर दरवाज़ा बन्द कर देती। चारपाई पर सो जाती। पुनः बुरी बुरी भावनाएं उठने लगतीं, व्याकुल होकर फिर खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर देखने लगती। बिटिया ने आकर पुकारा—

'मां।'

'बच्ची।' उसके कपोलों को चूमती हुई मनोरमा बोली।

'प्यास लगी है मां।'

जा बेटी! वह कोने में सुराही रक्खी है गिलास में उड़ेल कर पानी पी ले।

'नहीं माँ, सुराही टूट जायगी।'

अच्छा देख सामने लोटे में थोड़ा जल है पी ले।

'यह तो गरम है मैं न पीऊंगी।'

विवश होकर तरुणी को अपना स्थान छोड़ना पड़ा उसने सुराही से थोड़ा पानी उड़ेल कर प्रभा को पीने के लिए दिया। आप पुनः उसी

खिड़की के पास जाकर ध्यान पूर्वक बाहर देखने लगी। बेटी पानी पी कर मां के पास जाकर बोली—

'मां!' पिताजी नहीं आए।

'आते ही होंगे।'

'कहाँ गये हैं?'

'ज़मींदार साहब की छावनी पर।'

छोटी बच्ची प्रभा पुनः गुड़ियों के साथ खेलने लगी। उन्हें एक साथ कभी खिलाती, कभी सुलाती, कभी कपड़े पहनाती। स्त्री गुड़ियों को घर का काम-काज सिखाती जैसा कि वह अपनी मां से सीखती थी। दूल्हे और दुलहिन को एक कपड़ा बिछाकर सुलाती।

मनोरमा उसी भांति खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर देख रही थी। धीरे-धीरे धूप भी मलिन हो चली थी। सूर्य की प्रखरता भी कम हो चली थी लेकिन हवा में अभी वैसी ही गरमी थी। अब धीरे धीरे दो चार मनुष्य भी मैदान में टहलते हुये दिखाई देने लगे थे। चिड़ियां मुंह खोले इधर-उधर उड़ रहीं थीं लेकिन साहस नहीं होता था कि पृथ्वी पर बैठकर दो चार दाने चुन ले। दोपहरी उसी भांति नाच रही थी। दिशाओं में धूल छाई हुई थी। कोई भी चीज़ साफ दिखाई न देती थी।

उस धुंधले प्रकाश में आठ दस आदमी दूर से आते हुये दिखाई दे रहे थे। जिन्हें मनोरमा ध्यान पूर्वक देख रही थी। वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे किसी को सिर पर लिये चले आ रहे हों। धूल के कारण कुछ भी साफ़ साफ़ दिखाई न देता था। रह रह कर साधु की बात सत्य होने की आशंका होती जा रही थी। कलेजा कांप उठता था सोचती थी, क्या स्वप्न में भी नहीं है? कांपते हुये ओंठों से उसने पुकारा—

'प्रभा!'

'आई मां!'

'जल्दी इधर आ!'

दौड़ती हुई प्रभा मनोरमा के पास आकर खड़ी हो गई और उसके मुख की ओर देखने लगी।

'क्या है ?'

देख बच्ची सामने वे लोग किसी को अपने सिर पर लिये आ रहे हैं या मैं ही भ्रम में हूं।

'हां माँ, मुझे भी ऐसा ही प्रतीत हो रहा है'।

मनोरमा के हृदय का कम्पन बढ़ता ही जा रहा था। उसकी टकटकी लगी थी। दोनों उसी भांति खड़ी आने वालों को देख रही थीं। प्रभा अधिक देर तक न रुक सकी और खेलने के लिये अपने कमरे में चली गई। मनोरमा का गला भी प्यास के मारे सूख रहा था। लेकिन उसकी आँखें उधर से फिरती न थीं। विवश होकर उसने सुराही में से थोड़ा पानी उड़ेलकर पिया। फिर खिड़की के पास जाकर आने वालों को ध्यान पूर्वक देखने लगी। आने वाले क़रीब आ पहुँचे थे वे अब साफ साफ दिखाई पड़ रहे थे वास्तव में वे अपने सिर पर किसी को लिये आ रहे थे। मनोरमा की आँखों के सम्मुख शंका के बादल छाते जा रहे थे। अभी साफ साफ ज्ञात नहीं हो रहा था वे किसे लिए आ रहे हैं और क्या मामला है ? पास के ही बगीचे से होते हुये वे लोग गांव के करीब आ पहुंचे थे। सभी मौन थे, सिर नीचे किये हुये थे। वह सोया हुआ मनुष्य महेन्द्र प्रतापसिंह के समान दिखाई दे रहा था। तरुणी की दुनियां सूनी होती जा रही थी प्रियतम के समान विशाल काय शरीर देखकर। खड़ी खड़ी देख रही थी सोचती थी देखें वे लोग किधर मुड़ते हैं ?

सहसा युवती चौंक पड़ी, गगन से उल्कापात होने लगा। दिशायें निस्तब्ध हो गईं। उसको चारों ओर से हाहाकार ही हाहाकार सुनाई पड़ने लगा। उसके पैर के नीचे की भूमि खिसक गई। सामने प्रियतम की लाश ज़मीन पर पड़ी थी। मनोरमा हा नाथ ! कहकर दहाड़ मार कर पृथ्वी पर गिर पड़ी और चेतना शून्य हो गई। केवल श्वास से ही

किसी की तर्पण किया कर रही थी। माता की चीत्कार सुनकर प्रभा भी अपने कमरे से दौड़ती हुई मां के पास आ पहुँची। वह एक भोली भाली अजान लड़की थी। वास्तव में वह इस रहस्य को क्या समझती। उसे क्षण भर भी पिता की ऐसी दशा होने की आशंका न थी। वह माता को पृथ्वी पर सोई देखकर उसके पास जाकर बोली—

'मां तू बाहल क्यों थोई है?'

'हाय!'

अम्मा क्यों लो लही है। हाय हाय क्या कल लही है।

तरुणी उसी भांति निश्चल पड़ी थी। थोड़ी देर में पागल सी उस लाश को गोद में उठाकर रखने का प्रयत्न करने लगी। रह रह कर उनसे बातें भी करती जाती थी। मानो वे जैसे अभी जीवित हैं—

'नाथ'!

'रुष्ट हो गये'?

और वह पागल की तरह चौंककर ऊपर देखने लगी। आने वाले लोग मौन बैठे थे। उनकी आंखों से आंसू की बूंदें टपक रही थीं। उन्हें देख उसे कुछ चेतना हुई। अपने हृदय की वेदना कह कह कर विलाप करने लगी। एकाएक ऐसा हृदय विदारक क्रन्दन सुनकर गोरी गाँव के सभी लोग दौड़े हुए ठाकुर साहब के दरवाजे पर आ पहुंचे। अवाक् रह गये ऐसी अनहोनी बात देख कर। किसी के भी मुख से बात न निकलती थी! किसी को क्षण भर भी ऐसी विकट घटना होने की आशंका न थी।

'चौबे जी क्या बात है? इतने बड़े अनर्थ के होने का क्या कारण है?' गांव के मुखिया गनेशसिंह ने पूछा।

मुझे कुछ भी पता नहीं मुखिया साहब। पड़ोसी गोपालसिंह ने उत्तर दिया।

चुप रह बेटी मनोरमा! अब रो कर क्या करेगी। जो होने वाला था सो हो ही गया। वृद्ध मुखिया साहब ने समझाते हुए कहा।

लोगों के समझाने बुझाने पर मनोरमा का रुदन कुछ कम हुआ। अब वह सिसकियां भर रही थी। रह रह कर चीख उठती थी। ठाकुर साहब ने लाने वालों से पूछा—

ठाकुर साहब की यह दशा ....।

लाने वाले कुछ बोलते न थे उसी प्रकार मौन बैठे थे।

कुछ बताओ कैसे यह हत्या हुई, इसका क्या कारण है?

उसमें से एक ने आंसू पोंछते हुये कहा—

ये ज़मींदार प्रभुनारायण जी की छावनी से आ रहे थे धूप तेज थी। धूप की रक्षा के लिये ये अपने सिर पर तौलिया रक्खे हुये थे। एकाएक हवा तेजी से वह उठी। तौलिया उड़कर इनकी आंखों पर आ पड़ी। आंखें बन्द हो गईं सामने न देख सके कि पैर के नीचे क्या है। वहीं पर एक ईंट जमीन पर गड़ी हुई थी उसी से इन्हें ठोकर लग गई। ठोकर लगते ही ये पृथ्वी पर गिर पड़े अचेत हो गये हम लोगों ने इनके पास आकर देखा तो इनकी दसा शोचनीय थी, इन्हें हिचकियां चल रही थीं थोड़ी देर में ये इस दुनियां से चल बसे।

मुखिया साहब ने सिर हिलाते हुये कहा--

इतने बड़े बहादुर और पट्ठे की मृत्यु एक मामूली ठोकर से हो, यह असम्भव है। सब ने एक साथ मुखिया साहब की हां में हां मिलाई।

यह कैसी भीड़ इकट्ठी है। दूर से ही कमलासिंह ने पूछा।

हाय बांह टूट गई। बनावटी आंसू पोंछते हुये बिलख कर कमलासिंह ने कहा।

घबराइये नहीं, जो होने वाला था सो हो ही गया, अब क्या कीजियेगा। मुखिया साहब ने कहा।

'बिटिया प्रभा' पुचकारते हुये कमलासिंह ने उसे अपनी गोदी में उठा लिया।

'क्यों रो रही हो?'

प्रभा डबडबाई आंखों से केवल अपने दादा की ओर ही देखती थी।

'मनोरमा घबड़ाओ न अभी हम लोग तो हैं न।'

दुनियां लुट गई सान्त्वना कहां? मनोरमा ने रुदन के साथ कहा।

अब तो प्रवार जी की अन्त्येष्टि क्रिया करनी चाहिये। मुखिया साहब ने कहा।

हां, वह तो करनी ही होगी धीरज के साथ कमलासिंह ने कहा। अन्त में ठाकुर साहब की अन्त्येष्टि क्रिया की गई।

हत्या का गूढ़ रहस्य कोई भी न जान सका। मध्यान्ह काल में धूप के कारण रोनी सूरत बनाये वृक्ष देख रहे थे पर कुछ बता नहीं सकते थे। लोभ और प्रपञ्च से प्रेरित हत्यारों के पैरों की ठोकरें खाकर पृथ्वी की धूल उनके मुंह पर पड़कर उन्हें लानत दे रही थी, पर खोजने वालों को कुछ न पता लगी।

× × × ×

'माया, मेले में चलोगी' प्रभा ने कहा।

'कहां मेला है ! सखी।'

'गोरी गांव से उत्तर, उसी देवी के धाम पर।'

'कैसे मालूम ?'

'मेरी माँ कह रही थी।'

'चलूंगी।'

कपड़े पहन कर मेरे घर पर आना सब एक साथ ही चलेंगी। देखना कहीं भूलना मत।

'अच्छा।'

'जरा कमला सखी से भी कह देना भूलना नहीं, शायद हमें मौका न मिले।'

'तुम सब क्या मंसूबे बांध रही हो ?' ग्वाला रामदीन ने पूछा।

चल तू जानकर क्या करेगा। इतना कहती हुई सब खिलखिला कर हँस पड़ीं। लज्जित होकर रामदीन चला गया।

अम्मा ! अम्मा, ठुमकियां भरती हुई प्रभा ने कहा।

क्या है बची !

मेला देखने जाऊँगी। गांव की सभी लड़कियां जा रही हैं।

कौन कौन ?

'माया, मिन्नो और कमला।

उनके पास तो पैसा है बेटी ! मनमानी चीज़ें खरीद कर खायेंगी। आनन्द मनायेंगी । तू बेटी ! उन्हें देखकर केवल तरसोगी बेटी !

हम जाऊँगी, हम जाऊँगी, रोती हुई प्रभा ने कहा।

'अच्छा, जा बिटिया' आंसू पोंछती हुई मनोरमा ने कहा।

'हमारी धोती कहां है' ? प्रभा ने पूछा।

'देख इसी बक्स में होगी ! ले ताली ले खोल कर निकाल ले।'

प्रभा कपड़े पहन रही थी। इसी बीच उसके पड़ोस की सभी लड़कियां भी आ पहुँचीं और दरवाजे पर से पुकारने लगीं—

'प्रभा क्या अभी नहीं तैयार हुई ?'

'तैयार ही हूँ आ रही हूँ'।

'अच्छा, जा रही हूँ मां'।

जा बेटी, देखना भीड़ में चोट न लगने पावे। आंसू पोंछती हुई मनोरमा ने कहा।

बेटी के चले जाने पर मनोरमा सोचने लगी जो मेरी बच्ची रुपयों पैसों से खेलती थी जरा सा भी रोने पर मिठाइयां पा जाती थी कहीं भी जाना होता था तो अपने पिता के कन्धे पर बैठकर जाती थी। स्वामी जी उसे नाना प्रकार के खिलौने देते थे। आज वही बच्ची फटे कपड़े पहने हुये बिना पैसों के ही मेला देखने जा रही है। वह सबको मिठाइयां खाते देखकर केवल तरसेगी ही। हाय रे आरा जिला ! हाय रे गोरी गांव ! हाय रे क्षत्रिय जाति ! स्वामी जी जिन पड़ोसियों की आवश्यकताओं को अपना रुपया देकर पूरा कराते थे और बदले में एक पैसा भी नहीं लेते थे। वे भी बेटी प्रभा को एक पैसा न दे सके वास्तव में पहले सुख है तो पीछे दुख अवश्य मिलेगा और अगर पहले दुख है तो पीछे अवश्य सुख मिलेगा।

देवी के धाम पर निर्मला वेश्या का नाच हो रहा था। चारों ओर ठसाठस भीड़ थी। सभी लोग उसके गाने पर मुग्ध थे। कुछ लोग मस्ती में सिर हिला रहे थे तो कुछ लोग आँखें लड़ा रहे थे, कुछ लोग

उसके मुख की ओर आंखें फाड़ फाड़ कर देख रहे थे। जवान और वृद्ध सभी अपने अपने रंग में मस्त थे। निर्मला ने तान छेड़ा—

'समय की चाल निराली बालम।'

चारों ओर से वाह वाह की झड़ी लग गई। एक साथ ही सभी लोग मस्ती में झूमने लगे। निर्मला हँस हँस कर पुरस्कार पाने लगी।

प्रभा कोने में अपनी सखियों के साथ खड़ी होकर नाच देख रही थी। उसके नाच को देखकर सब हँस रही थीं। केवल एक ही ऐसा मुख था जिस पर मुस्कराहट न थी। वह था प्रभा का। दुःखी प्रभा ने सोचा यह गा-बजा कर कैसा रुपया इकट्ठा कर रही है। सभी लोग इसे खुशी से पैसा दे रहे हैं। अच्छा होता कि मैं भी मां से पूछ कर इसी प्रकार नाचती गाती और रुपये इकट्ठा करती।

'चलो चूड़ियाँ पहन लें' माया ने कहा।

सभी लड़कियां चूड़ी वाले की दूकान पर चूड़ियाँ पहनने लगीं बेचारी प्रभा खड़ी होकर सबका मुंह देख रही थी।

चलो माँ के लिये मिठाइयाँ ले लूँ, कमला ने कहा। सभी लड़कियाँ मिठाई वाले की दूकान पर जाकर अपने अपने घर के लिये मिठाइयां लेने लगीं। बेचारी प्रभा क्या करे वह दुःखी मन से सबकी ओर देख रही थी रह रह कर उसके मुख में मिठाई की सरसता देखकर पानी भी आ जाता था। लेकिन वह अपनी परिस्थिति से लाचार थी।

'अब तो सूरज डूब गया है घर चलना चाहिये' माया ने कहा।

उसके कहने के अनुसार सभी लड़कियों ने अपना अपना रास्ता लिया। सबके पीछे बेचारी प्रभा खाली हाथ चली आ रही थी। वह अपने कलेजे पर पत्थर रख कर घर पहुंची। सभी लड़कियां हँसती हुई अपने अपने घर में चली गईं बेचारी प्रभा दुःखी मन अपनी मां के पास पहुंची और सिसक सिसक कर रोने लगी।

'बिटिया रोओ न, कल मैं तुम्हारे लिये मिठाई ला दूंगी।'

प्रभा ने कपड़े उतार कर खाली पेट ही पानी पिया और बाहर ईंधन ढूंढने के लिये चली गई।

'खैर देखेंगे। समय कितने थपेड़े मारता है अब तो जो कुछ भी पड़ेगा सहना ही होगा। जीवन तो अपने बस का नहीं, जो कहीं फेंक दिया जाय? मनोरमा ने दयनीय दशा पर विचार किया?

'माँ, पानी और ईंधन इकट्ठा हो गया?'

'अच्छा, आ रही हूँ बेटी! जरा चूल्हे पर बटुआ रख दे।'

मनोरमा ने उठकर भोजन पकाया। आप भी खाया और प्रभा को भी खिलाया फिर एक साथ ही चारपाई पर सो गईं।

'बेटी! तूने मेले में क्या क्या देखा?'

'क्या कहूं मां! मैंने मेले में ऐसी अनोखी चीज़ देखी। एक औरत बढ़िया बढ़िया कपड़े पहने हुये हंस हँस कर नाच रही थी। सब लोग उसके गाने को सुनकर प्रसन्नता में विभोर थे। इतना ही नहीं उसे सब लोग रुपया भी दे रहे थे। देखते ही देखते उसका हाथ रुपयों से भर गया।'

'बता सकती हो बेटी, वह कौन थी?'

'नहीं मां।'

'वह वेश्या थी।'

'इस तरह तो उसका जीवन बहुत ही सुखी है उसे अच्छे अच्छे गहने और कपड़े पहनने को मिलते हैं। बढ़िया बढ़िया भोजन भी खाती होगी। अच्छा होता कि हम भी उसी की तरह नाचतीं और गातीं। इस तरह काफी रुपया पैदा करके तुम्हें देती मां।'

'नहीं! बेटी ऐसा न सोचो।'

'क्यों अम्मा! ऐसा करना बुरा है?'

'हां बिटिया! लोग क्या कहेंगे।'

'उसे सब लोग क्या कहते होंगे?' प्रभा ने पूछा।

'उसे क्या कहते होंगे ! उसका तो न घर है न परिवार, न पिता है न खानदान।'

'हमारे भी तो पिता नहीं हैं।'

'अभी पिता की इज्जत तो है न बेटी ! तुम्हारे दादा वगैरह भी हैं बेटी ! ऐसा न सोचो।

'मेले में जाने के लिये किसी ने एक पैसा नहीं दिया ! मैं किसी को अपना न मानूंगी, मैं उन्हें आज से दादा भी न कहूंगी।'

'ऐसा न सोचो बिटिया ! हँसी होगी।'

'हँसी होगी तो क्या, मैं तो अवश्य ऐसा करूंगी।'

प्रभा अभी भोली भाली नादान लड़की थी। मेले से आई थी। थकावट के कारण अधिक समय तक जाग न सकी सो गई।

करीब बारह बज गये। मनोरमा को नींद न आई। वह अपनी भोली भाली लड़की की ऐसी भावना सुनकर आश्चर्य में पड़ गई। सोचने लगी, कहीं ऐसा न हो कि प्रभा की भावना सत्य हो और हमें पुत्री की कमाई पर ही जीवन व्यतीत करना पड़े। प्रभा के दिल पर मेले से क्या प्रभाव पड़ा है यह तो स्पष्ट है ही।

'अम्मा···अम्मा···अम्मा··· !'

'क्या है बच्ची ! पुचकारती हुई मनोरमा ने पूछा।'

'प्यास लगी है मां।'

घड़े से गिलास में पानी उड़ेलकर देती हुई मनोरमा ने कहा—

'आज बड़ा गरम है।'

रात ढल चुकी थी, गरमी भी शान्त हो चली थी, धीरे धीरे दक्षिण की हवा भी चल रही थी और सोचती ही सोचती बेचारी मनोरमा यकायक सो गई।

× × ×

'ठाकुर साहब···ठाकुर साहब···।'

क्या है ? भीतर से मुन्नू ने कहा।

'जरा बाहर आइये।'

'कौन है ?' पूछता हुआ मुन्नू बाहर निकला।

'कहिये क्या हुक्म है ?'

'जमींदार साहब ने लगान माँगा है। कहते थे कि करीब चार साल का लगान बाक़ी है, अगर न देंगे तो खेत बेदखल हो जायगा।'

'अम्मा ! लगान लेने के लिये खड़े हैं।'

'इस समय तो रुपया नहीं है।' घूंघट के पट के भीतर से विधुरा मनोरमा ने कहा।

'अगर रुपया नहीं मिलेगा तो खेत बेदखल हो जायगा।'

'अच्छा कितना रुपया है ?'

'पचास रुपया।'

पचास रुपया सुनते ही मनोरमा निश्चल उसी भांति खड़ी रही सोचती थी ऐसी दशा में मैं रुपया कहाँ से लाऊँ। घर में एक पैसा भी नहीं है कि कुछ भी तो अदा कर सकूँ।

'दादा जी कल आपने हमें एक पैसा भी नहीं दिया अपने गुड़ियों के लिये मैं कपड़ा भी न ला सकी।' प्रभा ने कमलासिंह से पूछा।

'अच्छा ! बिटिया मैं ला दूंगा।'

'क्यों भाई क्यों बैठे हैं कहिये क्या हुक्म है' ! कमलासिंह ने कारिन्दा से पूछा।

'लगान के लिये ज़मींदार साहब ने भेजा है।'

'अभी नहीं मिला ?'

'नहीं।'

'क्या हुक्म हुआ ?'

अभी तो ठकुराइन इसी जगह खड़ी खड़ी रो रही थीं। शायद रुपया पास में नहीं है।

'अच्छा हमारे साथ चलो।'

'प्रभा ! अपनी माँ से कह देना कि दादा जी ने रुपया दे दिया है।'

'कितना रुपया है ?'

'पचास रुपया ।'

अपनी आलमारी से पचास रुपया निकाल कर कमलासिंह ने कारिन्दा को दे दिये, कारिन्दा रुपया लेकर छावनी की ओर रवाना हुआ ।

ठाकुर साहब की इस कृतज्ञता पर मनोरमा बहुत प्रसन्न हुई और उनके प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ गई और प्रलोभन का यह विषमय गुड़ वह प्रसन्नता से स्वीकार कर गई ।

कुछ मनोरमा के हृदय का घाव भी धीरे धीरे भर चला था, वह अपने अतीत को भूलती जाती थी । यौवन की मस्ती ने उसे अन्धा बना दिया । भविष्य को सुनहरा बनाने की लालसा बढ़ चली और मनोरमा अपनी भरी जवानी के जोश को न रोक सकी । उसकी आँखों में मादकता छाने लगी । कमलासिंह भी मनोरमा के यहाँ काफी आते जाते थे । उनका रुपयों का जाल भी काम कर गया था और मनोरमा काम बाण से व्याकुल होकर घायल मृगी की भांति आपात नेत्रों से कमलासिंह की ओर देखती थी । वह यह भी भूल गई कि कमलासिंह उसके पति के बड़े भाई हैं, उन्हें छूना भी नहीं चाहिये ।

वासना अन्धी है । उसमें हानि-लाभ-प्रतिष्ठा और निन्दा किसी बात की भी परवाह नहीं रहती । मनुष्य अपनी मानवता को भूल जाता है, वासना के वशीभूत होकर वह क्या नहीं करता । महा अनर्थ करने को भी उद्यत हो जाता है । कमलासिंह भी इस बात को भूल गये कि मनोरमा हमारी कौन है । और हम क्या करने जा रहे हैं ।

'बच्ची प्रभा ! तुम्हारी मां क्या कर रही है ?'

'दादा जी ! वह इस समय सोई है ?'

'घर में और कोई तो नहीं है ?'

'कोई नहीं है दादा ।'

कमलासिंह धीरे धीरे मकान के अन्दर घुस गये वे उस स्थान पर भी पहुंच गये जहाँ मनोरमा सोयी थी। उसकी चारपाई की बगल में खड़े हो गये उसके मुख की सुन्दरता का पान करने लगे। मनुष्य की दो भावनायें होती हैं, एक सत्य और दूसरी असत्य। सत्य भावना मनुष्य को धिक्कारती है, कोसती है कि क्या करने जा रहा है ऐसा करना पाप है, नहीं करना चाहिये। लेकिन असत्य भावना इतनी प्रबल होती है कि उसे दबा देती है और मनुष्य की सत्य भावना के ऊपर उसी प्रकार अधिकार कर लेती है जैसे पानी के ऊपर तेल। इसी असत्य भावना से प्रेरित होकर कमलासिंह भी सत्य और असत्य का ठीक ठीक निर्णय न कर सके।

चर · चर···चर मनोरमा की चारपाई बोल उठी।

कौन है, चौंकती हुई मनोरमा ने कहा।

चुप रहो, उसके मुंह को हाथ से बन्द करते हुये कमलासिंह ने कहा। अपने प्रेमी को पहचान कर मनोरमा भी चुप हो गई। उसकी नींद दूर चली गई। सपत्नी की भांति उनसे प्रेमालाप करने लगी।

'कब की सोई थी ?'

'अभी ही झपकी लगी है' कहती हुई मुसकराने लगी।

तुम्हारे कपोल पर यह सूजन कैसी ? बात के बहाने से ठाकुर साहब ने कपोल छू ही दिया।

'सूजन कहां है ?' मधुर कटाक्ष के साथ मनोरमा ने कहा।

'यह है' बताते हुये उन्होंने चुम्बन ले ही लिया।

अंग का स्पर्श होते ही मनोरमा के नस नस में बिजली दौड़ गई, उसके रोंगटे खड़े हो गये। अपने को संभाल न सकी और लज्जा का बांध टूट गया।

'तुम्हारी करधनी ढीली क्यों हो रही है ?'

मनोरमा का गला रुद्ध हो गया माधवी लता की भाँति वह भी कमलासिंह से लिपट गई मौन मौन प्रेमालाप होने लगा।

रात का तीसरा पहर था दोनों उठ बैठे। नकाव में घुसे हुये चोर की भाँति कमलासिंह उसके घर से निकल पड़े। मनोरमा भी उठकर घर का काम-काज देखने लगी।

कमलासिंह की अक्लमन्दी काम कर ही गई, निशाना भी शिकार को जाकर अचूक ही लगा। शिकार को पाये हुये शिकारी की भांति उनकी छाती ठंडी हो गई।

× × ×

हाय राम" हाय राम"'।

'क्या है माँ!'

'तबीयत ठीक नहीं है।'

'क्या हुआ है? जाऊं वैद्य जी के यहाँ से दवा लाऊं' प्रभा ने कहा।

''नहीं बिटिया कराहती हुई मनोरमा ने कहा।'

अब क्या कहना था। पाप का बीज धीरे-धीरे अंकुरित भी हो चला था। मनोरमा की तबीयत ख़राब न थी, उसे तो अब नरक में भी स्थान न दिखाई देता था। सोचती थी, अब क्या करूं, कहाँ जाऊं, कैसे समय बिताऊं? रह रह कर सोचती विष खालूँ या पानी में ही डूब मरूं। लेकिन रह रह कर सोचती थी। बेचारी लाड़िली प्रभा की क्या दशा होगी? उस पर क्या बीतेगी। अब तो मनोरमा के उदर में पाप का बीज करीब तीन महीने का हो चला था। क्या करती, उसकी आँखों के सम्मुख कुछ भी नहीं दिखाई देता था। उसने तो वह अनर्थ किया था जैसा कि उस गाँव में आज तक किसी ने भी नहीं किया था। यों तो प्रेम के मामले में काफी औरतें फंस चुकी थीं। लेकिन इस प्रकार नहीं।

४

अधिक मिठास में कीड़े पड़ जाते हैं, गहन मित्रता में ही शत्रुता का बीज निहित रहता है।

एक दिन मनोरमा मकान के दरवाजे पर बैठी थी, शाम हो चली थी। भगवान भास्कर भी अस्ताचल के करीब पहुंच चुके थे। उनका मुख पापी को देखकर तमतमा उठा था।

भाभी · भाभी··· ।

'क्या है ? ठाकुर साहब ?' मनोरमा ने पूछा।

इतना कहते ही मोहनसिंह चुपचाप उसकी ओर देखने लगे। वे सदैव की भांति प्रसन्न न दिखायी देते थे, उनके मुख पर जैसे क्रोध की लालिमा छाई हुई थी। मनोरमा उन्हें देखते ही सहम-सी गई। उसे कुछ दाल में काला प्रतीत होने लगा।

'ठाकुर साहब ! क्यों घबड़ाये हैं ?'

'कुछ नहीं।'

'नहीं, बताइये बताना होगा ?'

'न बताऊँगा, अबला जीवन का अन्त हो जायगा।' मोहनसिंह ने भर्राई आवाज में कहा।

'क्यों ?'

'कुछ ऐसी ही बात है।'

'ठाकुर साहब ! पानी ही तो पत्थर बन जाता है।' विस्मित स्वर में मनोरमा ने कहा।

'लेकिन ठण्डक के कारण।'

'और यहाँ।'

इसमें तो बड़वानल सी ज्वाला धधक रही है।

तब··· ।

'अबला की दोनों निधि, आँखों का नीर और छाती का क्षीर भस्म हो जायगा ?' मोहनसिंह ने काँपते होठों से कहा।

'नारी में ही मृदुलता और सिंहनी का रूप छिपा है।'

'सब एक समान नहीं।'

मनोरमा शास्त्रार्थ में विजय न पा सकने के कारण हठ पूर्वक मोहनसिंह से छिपी हुई बात पूछने लगी। गूढ़ रहस्य को जानने के लिये उत्सुक हो उठी।

'रोओगी भाभी।'

'नहीं।'

'कसम खाओ' मोहन ने कहा।

'जवानी कसम।'

कसम खाने की बात सुनते ही मनोरमा सहम-सी गई। थोड़ी देर के लिये चुप हो गई। सोचने लगी—बात जानी हुई नहीं है, दशा भी शोचनीय है। कैसे मैंने कसम खा ली। शायद मैं अपने को संभाल न सकूं आँसू आ ही जायें लेकिन आजमाऊंगी।

जवानी शब्द उसके मुख से निकलते ही उसकी बीती बात पुनः याद आई, जब कि वह अपने पति के साथ प्रेमालाप करती थी। थोड़ी देर के लिये चुप हो गई, दुःख से हृदय भी व्याकुल हो उठा लेकिन विवश थी। वचन पहले ही दे चुकी थी।

'सुनिये !' मोहनसिंह ने कहा—'कलेजा थाम लीजिये।'

'क्यों ?'

'कलेजे की ही चोट है।'

'अब तो वह पत्थर से भी कठोर हो गया है' मनोरमा ने कहा।

बीती बात है करीब छः महीना हुआ। भाई महेन्द्र प्रताप जी की मृत्यु का कारण कुछ और था। उसके पीछे तो एक बहुत बड़ा इतिहास छिपा है। वास्तव में उनकी मृत्यु ठोकर लगकर नहीं हुई थी। वह तो अनर्थ और हत्या के छिपाने का एक बहाना था। भाई की हत्या का कारण भाई ही था। इस हत्या के करने वाले प्रभा के दादा कमलासिंह ही हैं।

'आगे कहा नहीं जाता।' दुःखी मन से मोहन ने कहा।

'कहना ही होगा।'

'क्या कहूँ, परिशोध का उपाय नहीं।' 'अच्छा सुनिए भाभी।'

'प्रताप भाई साहब की मृत्यु करने वाली उनकी अतुल सम्पत्ति ही थी। जिसे कमलासिंह नहीं देख सकते थे। वे किसी न किसी रूप में उसे अपनाना चाहते थे। नाना प्रकार के उपाय करके व हार चुके थे, सोचने लगे बिना उनकी हत्या किये अब नहीं मिल सकता, किसी प्रकार उनके जीवन का अन्त करना चाहिये। मौका ढूंढ रहे थे। लेकिन अवसर नहीं मिलता था इस महान अनर्थ के करने का। उसी रोज ही उन्हें मौका मिला जब प्रताप जी जमींदार साहब की छावनी से आ रहे थे। हथियार से सुसज्जित पन्द्रह बीस आदमियों को वे पहिले ही रास्ते में छिपा कर रख चुके थे। जब प्रताप भाई साहब लौट रहे थे उस समय उस निर्जन स्थान में सब एक साथ उन पर टूट पड़े प्रभा के पिता में इतनी ताकत थी कि उन्होंने पहली बार सबको परास्त कर दिया, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। बेचारे लाचार थे विवश हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े' इतना कहते कहते मोहनसिंह का गला रुद्ध हो गया, थोड़ी देर के लिये वे मौन हो गये। मनोरमा

के ऊपर पुनः पहाड़ सा गिरता जाता था, उसका कलेजा सैकड़ों टुकड़े होता जाता था।

'तब क्या हुआ ?' सिसकती हुई मनोरमा ने पूछा।

'भाभी ! क्या आप रो पड़ीं।'

आँसू छिपाते हुये मनोरमा ने कहा—

'नहीं, आगे कहिये।'

'आघात पर आघात होने लगे। थोड़े ही समय में वे अचेत हो गये। कमलासिंह उछलकर उनकी छाती पर जा बैठे और चार आदमी उनकी हत्या का प्रबन्ध करने लगे। दो ने एक लाठी गले के नीचे और एक लाठी गले के ऊपर रखकर दबा दिया ! भाई साहब के मुख से एक बार हाय शब्द निकला और वह सर्वदा के लिये चल दिए। कमलासिंह यह कहते छाती से उतर पड़े कि 'अब तो काम सिद्ध होगा' प्रसन्न होकर बोले—

लेजाकर इन्हें घर पर पहुँचा देना और कह देना कि ठोकर लगने से इनकी मृत्यु हुई है। आप वहाँ से खिसक चले।'

'हाय' यकायक मनोरमा के मुख से निकल पड़ा।

'क्या करोगी भाभी ?'

'क्या करूंगी, कुछ वश नहीं।'

'सोच न कीजिये भाभी ! इतना बड़ा पाप करने पर भी उस पापी के हाथ सम्पत्ति न लगी, अभी तो आप हैं। आप के रहते कौन सम्पत्ति का अधिकारी हो सकता है ?'

मनोरमा कुछ बोलती न थी वह अपनी दशा को सोच रही थी, उसका तो सर्वस्व खो गया था वह तो स्वयं को भी यौवन की मादकता में खो चुकी थी। उसे तो पहले ही से गुड़ के साथ विष दे दिया गया था, उसका प्रभाव भी हो चला था। अब इस विष को शान्त करने का उपाय सोचना चाहिये और उस पापी को दिखाना चाहिये कि पाप का फल कैसा होता है।

'मोहनसिंह इस हत्या की कोई निशानी।'

लीजिए उनके मुकदमे का यह काग़ज़ है, यह उनकी रिपोर्ट है, जो उन्होंने अपनी जान की रक्षा के लिए दारोगा साहब को किया था। काग़ज़ को मनोरमा के हाथ में देते हुए मोहनसिंह ने कहा—

'घबड़ावें न भाभी ! अभी हम लोग हैं न।

'क्या कहूँ ठाकुर साहब, मेरे लिये तो अब दुनियां में कोई नहीं रहा।

थोड़ी-सी बात के लिये कोई नहीं है। लेकिन और सभी के लिये तो हम लोग हैं न भाभी।

'खैर, आप ही लोगों का न अब सहारा ठहरा।'

अच्छा भाभी ।

'कहिये।'

अब तो काफी रात हो गई घर पर लोग घबड़ाते होंगे। औरतें भी भोजन रख कर मेरा इन्तज़ार करती होंगी।' कुछ दुःख न कीजियेगा। धीरज धरिये। इतना कहते हुये मोहनसिंह उठ खड़े हुये।

अच्छा अब कब आइयेगा? धीमे से मनोरम ने पूछा।

'देखा जायगा।'

'नहीं, साफ बता कर जाइये।'

'परसों आऊँगा।'

× × ×

'दीपक में भी तेल नहीं है' टिमटिमाते दीपक के पास जाकर मनोरमा ने कहा।

'बच्ची प्रभा ! उठ भोजन कर ले।'

'नहीं खाऊंगी माँ ! भूख नहीं लगी है।' अलसाई पलकें खोलती हुई प्रभा ने कहा।

'थोड़ा ही खा ले बिटिया।'

अधिक आग्रह करने पर प्रभा खाने के लिये तैयार हो गई, वास्तव

में बच्चों के वास्तविक रहस्य को माँ ही जानती है। मनोरमा प्रभा को खिला कर आप भी खा कर साथ लेकर चारपाई पर सो गई।

नींद न आई। सोचने लगी सबसे पहले हमें इस पेट के पाप का अन्त करना चाहिये। बिना काशी गये हो भी नहीं सकता, अगर इधर कहीं किसी के पास जाती हूं तो भेद खुल जायगा। सोचते सोचते नींद आ गई।

× × ×

मनोरमा ने सोचा प्रभा को मां के यहां पहुंचा दूं और आप काशी चल कर औषधि का प्रबन्ध करूँ।

'बेटी ! नानी के घर चलोगी।'

'चलो मां ! चलूंगी।'

'दूर तो है पहुंच सकोगी।'

'हां मां ! मैं पैदल ही पहुँच जाऊँगी।'

प्रभा का साहस देख कर मनोरमा हँस पड़ी। झुक कर उसके कोमल कपोलों को चूमने लगी। मन ही मन सोचने लगी कहाँ आठ वर्ष की भोली लड़की और कहाँ उसका इतना बड़ा साहस। अब देर करने का मौका नहीं था। अपने मैके की तैयारी करने लगी।

बच्ची ! यह अपना कुरता पहन ले।'

'अम्मा मैं यह न पहनूंगी, मैं वह लाल कुरता पहनूंगी।'

'अच्छा उसी को पहन ले।'

सब सामान ठीक करके मनोरमा अपनी माँ के यहाँ जाने को तैयार हो गई। उसकी मां चुनार के पास काशीपुर नामक गांव में रहती थी। उसका भी कोई न था, केवल अकेले दम का सहारा था।

'बहिन कहाँ जा रही हो ? पड़ोस की एक औरत ने आकर पूछा।

'माई के यहाँ जा रही हूँ बहन ! दीन भाव में मनोरमा ने कहा।

'कब लौटोगी।'

'देखा जायगा बहन ! अभी बाहर ही बाहर काशी भी जाना है।

'क्यों ?'

दर्शन करने का विचार है अब तो जीवन में केवल दर्शन और भजन ही बाकी है बहन।

'हाँ बहन ! क्या करोगी ?'

'अच्छा चलूँगी बहन ! घाम होवेगा।'

हाँ बहन ! जाओ दूर भी जाना है कहती हुई पड़ोसिन अपने घर चली गई।

'चलो बेटी ! चला जाय।' घर का ताला बन्द करती हुई मनोरमा ने कहा।

'यह लोटा बाहर ही छूट गया माँ !'

'भले देख लिया बेटी ! नहीं तो कंगाली में आटा गीला होने ही वाला था।'

आगे-आगे प्रभा और पीछे-पीछे मनोरमा बगल में गठरी दाबे चली जा रही थी।

× × ×

कड़...कड़ ! कड़... कड़...।

प्रभा दौड़कर माता की टांगों में लिपट गई और बोली—

'माँ ! जान न बचेगी।'

'क्यों बच्ची।'

'बिजली हमें मार देगी'।

नहीं बिटिया ऐसा ही ज्ञात होता है। वह तो यहाँ से मीलों दूर गिरी होगी। तू भ्रम में है बेटी !

'चलो जल्दी जल्दी उस सामने के गाँव में चला जाय।'

'देख उधर काफी तेज वर्षा होती चली आ रही है। पेड़-पौधे भी दिखायी नहीं दे रहे हैं। मालूम होता है अब देश नहीं बचेगा, हवा भी तेज चल रही है।'

माँ, हमसे दौड़ा तो नहीं जायगा।'

'बेटी ! आओ गोद में ले लूं ।'

मनोरमा प्रभा को गोद में लिये हुये जल्दी गांव की ओर चली जा रही थी। वहाँ थोड़ी ही दूर पहुंच पायी थी कि घोर वृष्टि होने लगी। उसके कपड़े एक दम भीग गये थे। कपड़े शरीर में बिल्कुल चिपट गये थे जिससे जल्दी जल्दी चला भी नहीं जाता था। वर्षा के बन्द होने की कोई आशा भी नहीं दिखायी देती थी, क्योंकि बादल आसमान में उसी भाँति अभी घिरे थे। प्रभा की ठुड्डी हिल रही थी, दांत कड़ाकड़ बज रहे थे। रह रह कर बिजली भी कौंध उठती थी।

'बच्ची धीरज धर अब पहुंची।' कांपते हुये आगे से मनोरमा ने कहा।

'अब तो नहीं रहा जाता मां।'

'क्या करोगी अब तो सहना ही होगा।'

'यहाँ बैठने को जगह नहीं है' एक साथ ही बैठे हुये कई आदमी बोल उठे।

'बाबू थोड़ी देर के लिये...।' गिड़गिड़ाती हुई मनोरमा ने कहा।

'यहाँ आदमी रहते हैं बगल में औरतों के रहने का घर है। जा देख जगह हो तो रुक जा।'

काँपती हुई मनोरमा प्रभा को लेकर बगल के मकान में पहुंची किसी प्रकार शरण मिली। अपने कपड़े बदले, भीगे कपड़े सुखाये, प्रभा को भी सूखे कपड़े पहनाये। पुनः घर की औरतों के पूछने पर अपनी सभी दुख दर्द कहानी कह सुनायी। सब ने उसकी राम कहानी सुनकर उसको भोजन दिया और मनोरमा डबडबायी आँखों से उनकी ओर देखती रही। पानी भी धीरे धीरे बन्द हो चला था पुनः अपनी राह ली।

× × ×

'रास्ते में जाती हुई मनोरमा ने कहा—मालूम होता है भगवान भी

हम लोगों से रूठ गये हैं, क्योंकि हम लोगों के पहुंचते ही पानी बन्द हो गया। बादल भी फट गया, धूप भी निकल आई।'

'अभी कितनी दूर है मां।'

'देख वही सामने आम के बगीचे की आड़ में दिखायी दे रहा है।'

प्रभा मुसकरा उठी, मनोरमा ने झुककर प्रभा का कपोल चूम लिया। और बोली—

'बच्ची अब तो ठंड नहीं मालूम होती है न।'

'नहीं मां।'

'अच्छा हमारे आगे-आगे चलो'।

हँसती हुई प्रभा मनोरमा के आगे-आगे चलने लगी।

× × ×

दादी···दादी···दादी···पड़ोसी रामनाथ ने पुकारा।

'क्या है बेटा !

'बहन आई है'।

'कौन बहन ?'

आरा जिला वाली मनोरमा बहन।

कहाँ है बेटा !

'वह देखो पेड़ के नीचे बैठी है।'

बुढ़िया कुंये से स्वच्छ जल खींच कर धार पीसने लगी। उसके मन में आनन्द भी होता था और विषाद भी। आनन्द बेटी के चिर वियोग के मिलन का और विषाद उस पर गिरे हुये वज्र को याद कर।

जय भगवती माई ! बच्ची को कुशल से रखना धार को जमीन पर गिराती हुई मनोरमा ने कहा।

आगे-आगे बूढ़ी माँ और पीछे-पीछे मनोरमा प्रभा को लिये हुये घर पर आई। माँ से लिपट कर मनोरमा रोने लगी। पुनः सान्त्वना देने पर धीरज हुआ।

'कब की चली थी बेटी।'

'बड़े सवेरे ही की माँ।'

पानी पड़ने से तो काफी तकलीफ हुई होगी।

'कुछ न पूछो माँ।'

माँ के यहाँ रहते हुये मनोरमा को करीब पन्द्रह दिन व्यतीत हो चले थे। एक दिन मनोरमा ने कहा।

'माँ! विचार होता है जरा गंगा स्नान करने का और दर्शन करने का।'

'रुको बेटी मैं भी चलने ही वाली हूँ साथ ही चला जायगा।'

मनोरमा सोचने लगी माँ के साथ में रहने से मेरा काम सिद्ध न होगा। जाना बेकार ही होगा।

'नहीं माँ! मैं अकेले जाऊँगी।'

अच्छा, जा रास्ते के लिये थोड़ा सत्तू बाँध ले देख सामने गठरी में रखा है।

मनोरमा सत्तू की गठरी बाँध रही थी। उसकी आँखों से आंसू की बूँद टपक रही थीं। अपनी दीनता और पापमय दशा पर सोच कर रही थी। उसके पेट का गर्भ भी समाज के सम्मुख आने की कोशिश कर रहा था। वह अब छिपाने योग्य नहीं था।

'माँ! अब तो मैं जा रही हूँ।'

'कब तक आओगी।'

'चार पाँच दिन में आ जाऊँगी।'

'अच्छा ले रास्ते के लिये ये पाँच रुपये भी लेती जा।' रुपयों को हाथ में देती हुई बुढ़िया ने कहा।

छीं...छीं.. छीं...पड़ोस की एक लड़की छींक उठी।

हाय भगवान! अब क्या करने वाले हैं? मन में कहती हुई मनोरमा थोड़ी देर के लिये रुक गई।

'अच्छा देखा जायेगा, कहती हुई आगे बढ़ी।'

× × ×

आओ बच्ची यहीं स्नान कर लो दशाश्वमेधघाट के एक वृद्ध पण्डे ने पुकारा।

यहां हर तरह का आराम मिलेगा, दूसरे ने कहते हुये अपने पास आने का इशारा किया। गंगा माई तेरी शरण में हूँ मेरी बाधा को दूर कर तेरे सिवा अब कोई सहारा नहीं, कहती हुई मनोरमा जल उठा कर मस्तक पर लगा पुनः सीढ़ी पर बैठ कर स्नान करने लगी। स्नान कर चुकने के बाद सोची मैं कौन सा मुँह लेकर विश्वनाथ जी का दर्शन करने चलूँ। पाप का कुण्ड तो मेरे पास है। मन्दिर भी कलंकित हो जायगा। दुनिया की निगाह से मैं भले ही उस पाप को छिपा लूँ लेकिन भगवान की निगाह से मैं इसे कैसे छिपा सकती हूँ।

खड़ी खड़ी क्या सोच रही हो बहन! पास में नहाती हुई एक औरत ने पूछा।

कुछ नहीं बहन! मनोरमा ने बनावटी मुसकान से उत्तर दिया। सामान लेकर चौक की राह ली।

'डाक्टर साहब!' आँसू पोंछती हुई मनोरमा ने कहा।

'क्या है बहन! क्यों रो रही हो?'

.....................।

'कहती क्यों नहीं, यहां लज्जा से तो काम होगा नहीं, यहां तो गुप्त से भी गुप्त बात बतानी पड़ती है बिना बताये किसी भी रोग की दवा नहीं हो सकती। इसलिये लज्जा छोड़कर बताओ क्या बात है?' डाक्टर साहब ने कहा।

'इसी पेट में पाप का कुण्ड छिपा है' कांपते हुये ओठों से सिर नीचे किये हुये मनोरमा ने कहा।

'तब क्या होना चाहिये।' आशय समझ कर डाक्टर साहब ने पूछा।

'जिस तरह भी हो इसे दूर करने की कृपा कीजिये बाबू जी।'

'अच्छा, घबड़ाओ नहीं, दूर हो जायगा। बैठो और मरीज़ों को देख लूँ।'

'अच्छा।' कहती हुई मनोरमा उसी जगह बैठ गई।

'तीन बज गया' घड़ी की ओर देखते हुए डाक्टर साहब ने कहा।

'इधर आओ बहन।'

लज्जा से विनीत मनोरमा डाक्टर साहब की कुर्सी के बगल में जाकर बैठ गई।

'लो इस दवा को पी लो' लाल दवा गिलास में डालकर देते हुये डाक्टर साहब ने कहा।

इसका दाम क्या हुआ डाक्टर साहब! मनोरमा ने आँचल के कोने को खोलते हुये कहा।

'पाँच रुपया।'

'लीजिये।' काँपते होठों से कहती हुई मनोरमा ने हाथ पर रख दिये।

अब कब आना होगा बाबू जी!

'कल सवेरे।'

लड़खड़ाते पाँवो से मनोरमा चली जा रही थी, सूर्य भी अस्त हो रहा था। सोचती थी कि इस अनजान शहर में मैं कहाँ रात बिताऊँगी· इसकी एक एक इंच भूमि पर रुपयों का मोल है, स्त्री जाति ठहरी, लेकिन इसका उसे इतना डर न था जितना किसी के ठुकराने का। सोचती थी अगर मैं किसी की दुकान के पास जाती हूँ तो अनजान में वह हमें, ठुकरा देगा। लेकिन जब मुझे विश्व ही ठुकराना चाहता है। तब उसके ठुकराने का मुझे शोक कैसा।

'बाबू जी। एक रात मैं यहाँ सो सकती हूँ,' दीन भाव में मनोरमा ने दुकानदार से पूछा।

'तुम्हारा घर कहाँ है?' उच्च स्वर में दुकनदार ने पूछा।

'बाबू आरा जिला।'

'गाँव का नाम?'

'गोरी गाँव।'

'अच्छा सो सकती हो।'

उसी दुकान के लकड़ी के पल्ले पर अबला मनोरमा भूखी सो रही। उसके पेट की ज्वाला बढ़ती जा रही थी क्या करती और किससे कहती। वह करवटें बदलती रही सोचती रही हाय ! भगवन् अब मैं क्या करूँ अब मैं क्या करूँ मेरे शरीर के ऊपर जो पड़ता उसे मैं सह लेती लेकिन मैं रुपया कहाँ से लाऊँ कल मैं कैसे डाक्टर को फीस दूँगी, कहाँ से रुपया आवेगा। डाक्टर साहब भी परिचित नहीं हैं अगर उस एक खुराक दवा से पाप का कुण्ड न फूटा तो पाप के दूर होने की कोई आशा नहीं। रात भी करीब हो चली। अभी दवा का कुछ भी असर नहीं दिखायी देता।

'क्यों जी कुछ असर हुआ ? डाक्टर ने पूछा।

'जरा भी नहीं बाबू।'

'अच्छा रुपया लायी हैं।'

मैं दीना हूं, अनाथा हूँ विपत्ति की मारी हूँ रुपया तो नहीं है, श्रीमान् आपकी दया की आश्रित हूं। जैसी मरजी हो' सिसकती हुई मनोरमा ने कहा।

'तब तो दवा नहीं मिलेगी।'

नहीं सरकार आजीवन आपकी आभारी रहूँगी पैर पकड़कर रोने लगी।

'कुछ भी न सुना जायेगा बाहर निकल जाइये।'

'ऐसा न कहिये बाबू जी।'

'अभी नहीं निकली।'

पापमय पेट को पकड़े मनोरमा डाक्टर की दुकान से निकल पड़ी। सोचने लगी अब क्या करूँ कहाँ जाऊँ मुझे अब तो ज्ञात होता है कि इस पाप से मेरा पिण्ड न छूटेगा। मुझे दर दर की ठोकरें खानी पड़ेंगी। अब समाज की विडम्बना में ही रह कर जीवन बिताना होगा। हे भगवन् ! आपने कितने कितने पापियों को आश्रय दिया है क्या मुझ पापिन के लिये आपके धाम में आश्रय नहीं ?

दूसरे दिन मनोरमा ने हताश होकर अपने मैके की राह ली उसके पैर न उठते थे। सोचती थी इसी गर्भ के कारण हमें माँ के घर भी अधिक समय तक आश्रय न मिल सकेगा। अब तो हमें सभी लोगों की गाली और अपमान सहना ही होगा।

× × ×

माँ के घर पर रहते मनोरमा को महीनों बीत गये पड़ोस वालों को भी जलन होती थी। वे सोचते थे किसी प्रकार इसे यहाँ से हटाना चाहिये कहीं ऐसा न हो कि बुढ़िया इसे अपनी सम्पत्ति लिख दे। लेकिन उन सबों को मौका नहीं मिलता था। इसी बीच में कमलासिंह का पत्र भी मिला कि मनोरमा तो अब दीन से गिर गई है उसे वहाँ भी स्थान नहीं मिलना चाहिये वह कहीं भी रहने योग्य नहीं है। पड़ोसियों को अब अच्छा मौका मिला।

क्यों बहन, तुम पीली क्यों होती जा रही हो? पड़ोस की एक लड़की ने पूछा।

'कोई ऐसी बात तो नहीं है, कुछ तबीयत खराब थी' मनोरमा ने उत्तर दिया।

अब क्या था अब तो सब की दृष्टि मनोरमा के पेट के ऊपर पड़ने लगी। सारे गाँव में धीरे धीरे यही शोहरत फैल गई। सभी पड़ोसी बुढ़िया को डाटने लगे। विवश होकर उसे कहना ही पड़ा—

'बिटिया! घर पर जाकर अपनी जायदाद भी देख आ?'

'कल जाऊंगी माँ।'

'प्रभा को भी साथ ले जाओगी?'

'नहीं माँ! उसे अभी अपने ही यहाँ रक्खो।' अकेले दम का सहारा रहेगी।

मनोरमा भी सभी रहस्य को समझ गई अब सबको अपनी ओर देखते देखकर, सोचने लगी चलो, इज्जत के साथ यहाँ से निकल चलें।

× × ×

५

नारी के पास लज्जा और सतीत्व ही ऐसे रत्न हैं जिनके बल पर वह चाहे तो सम्राट् को भी नत मस्तक करा सकती है, समुद्र को सुखा सकती है, यमराज को हरा सकती है, सुमेरु को रज में मिला सकती है, मानियों का मान मर्दन कर सकती है, असम्भव को सम्भव बना सकती है। कमलासिंह ने सोचा मैंने महेन्द्र प्रताप की हत्या की, कोई भी उपाय बाकी न छोड़ा ज़मीन आसमान एक कर दिया भाई की सम्पत्ति का स्वामी होने के लिये, लेकिन सब व्यर्थ हुआ। सफलता तो मुझे तब मिली जब मैंने मनोरमा के दोनों रत्नों को (लज्जा और सतीत्व) छीन लिया। मैं आशा करता हूँ कि अब सभी सम्पत्ति हमारी ही होकर रहेगी। अब तो वह स्वयं ही इस देश में मुँह न दिखायेगी। फिर दिखायेगी भी वह कैसे। मैंने तो उसके पीछे वह बाण छोड़ा है जो उसे तीनों लोक में कहीं भी शरण न लेने देगा और न तो उसे कोई आश्रय ही दे सकता है।

'बाबू जी'''बाबू जी' केशव ने आकर कहा।

क्या है बेटा ?

'चाची आई है।'

कौन चाची ?

प्रभा की माँ।

'प्रभा भी आई है?'

वह तो नहीं है बाबू जी।

इतना सुनते ही कमला को चटकना लगा। उन्होंने सोचा क्या उसको इसने कहीं छोड़ तो नहीं दिया। सोये हुये वे तरह तरह की शंकायें करने लगे।

'बेटा, जा उससे पूछ बच्ची प्रभा कहाँ रह गई?' कमलासिंह ने कहा।

अच्छा कहता हुआ केशव दौड़ता हुआ मनोरमा के पास पहुँचा और पूछा--

'चाची···चाची!'

क्या है? केशव बेटा।

'बच्ची प्रभा कहाँ रह गई चाची?'

उसकी नानी ने नहीं आने दिया, वह अभी वहीं है, इतना कहते हुये मनोरमा अपनी कोठरी में जाकर कपड़े उतारने लगी।

'बहन मजे में रही न!' केशव की माँ ने पूछा।

'हाँ बहन, बड़े मजे में रही' मनोरमा ने झूठी हँसी हँसते हुये उत्तर दिया!

लेकिन बहन तू इतनी पीली क्यों हो गई केशव की माँ ने पुनः पूछा।

तबीयत खराब थी बहन!

'क्या हुआ था?'

'बुखार आ रहा था।'

'अब तो ठीक है न।'

'हाँ बहन! अब तो ठीक है पेट को छिपाती हुई मनोरमा ने कहा।

वास्तव में इन सब बातों के पूछने का रहस्य कुछ और था। वह तो था उसे गोरी गाँव से निकालने का श्री गणेश। वह चाहती थी किसी प्रकार उसी के मुख से भेद खुल जाय। कोई यह नहीं कहता कि 'आव बैल मोहि मार' भला मनोरमा कैसे अपने पाप के कुण्ड का

भण्डाफोड़ करती। सभी औरतों में धीरे धीरे यह बात गुनगुना गई। लेकिन किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कहने की। वास्तव में ठहरी इज्जत की बात।

एक महीना बीत गया। मनोरमा अब घर में से निकलती न थी। पड़ोस के आदमी सोचने लगे शायद वह कहीं चली गई दिखाई नहीं पड़ती। बेचारी निकलती भी कैसे अब तो उसका सात महीना पूरा हो चला था। अब तो पाप कपड़े के आवरण में छिपने योग्य भी नहीं था।

बहन! यह क्या! एक दिन केशव की माँ ने पूछा—

'चली हो टट्टी की आड़ में शिकार खेलने। कुछ भी तो बोल।

मनोरमा सिर नीचे किये हुये बैठी थी कुछ भी न बोलती थी उसकी आँखों से आंसू की बून्दें टपक रही थीं।

अच्छा तुम्हारी खबर ली जायगी तू ने इतने दिनों के बाद दादा की इज्जत पर पानी फेर दिया। भला लोग क्या कहेंगे। कैसे किसी के सम्मुख मुंह दिखाया जायगा। अब तो चिल्लू भर पानी भी डूबकर मरने को न मिलेगा। इतना कहतीं हुई श्यामा दाँत पीसती हुई मकान से बाहर निकल आई।

बहन तू ने यह क्या किया? पड़ोसियों ने पूछा।

मनोरमा सिर नीचा किये हुये उसी प्रकार बैठी थी कुछ बोलती न थी।

इधर कमलासिंह का भी कलेजा काँप रहा था सोचते थे कहीं ऐसा न हो कि वह भेद को खोल दे। नहीं तो मैं भी कहीं मुंह दिखाने के योग्य न रह जाऊंगा। संसार मेरे नाम पर थूकेगा।

'अच्छा, बताओ यह किसका पेट है?' उन में से एक औरत ने पूछा।

पहले की भांति इस बार भी मनोरमा मौन थी कुछ बोलती न थी। सोचती थी मैं तो बुरी हो ही गई लेकिन मेरा यह धर्म नहीं कि मैं

दूसरे की इज्जत को भी मिट्टी में मिला दूं असल में उसने मेरे साथ किया तो बहुत बड़ा अनर्थ है लेकिन वह खुद भोगेगा। मैं तो अपनी करनी का फल भोग ही रही हूँ।

'नहीं बताओगी' लोग डाट डाट कर पूछने लगे।

'अच्छा जाने दीजिए' कमलासिंह ने कहा।

'अगर तुम्हें लज्जा हो तो रात में कहीं निकल जाना' कमलासिंह ने कहा।

'ओ अपने सगे भाई के हत्यारे, मेरे सर्वस्व को लूटने वाले कुत्ते! तू भी अपनी करनी का फल भोगेगा, अच्छी तरह भोगेगा मेरी आँखों के सामने ही।' इतना कह कर मनोरमा दाँत पीसने लगी।

कमलासिंह कुछ बोल न सके लज्जा से सिर नीचे किये हुये मकान के बाहर निकल गये।

× × ×

'अब तो सब लोग सो गये होंगे' मनोरमा ने नीरव रजनी में सोचा।

जागते रहो···जागते रहो।

यह किसकी आवाज़! यह तो शायद चौकीदार की······।

'अच्छा चलना चाहिये वह भी दूर चला गया होगा।' मनोरमा ने मन में सोचा।

बहन रजनी! आज मुझे तुम्हारी ही गोद में शरण लेनी है। तेरे ही काले बाल में मेरी लज्जा और समाज की विडम्बना छिपी है। तू और काली हो जा, ताकि मुझ पापिनी को लोग देख न सकें, तेरे सहारे मैं कहीं छिप कर अपना प्राण और मुख छिपा सकूँ।

दो क्षण मकान की ओर डबडबायी आँखों से देखती रही। फिर पागलों की भांति मकान की किवाड़ से लिपट कर सिसकियां भरने लगी और बोली—बहन किवाड़! शायद मेरा तेरा अन्तिम मिलन है शायद मैं पुनः अब इन हाथों से तुझे न खोल सकूँगी।

चम···चम···चम चम···।

मनोरमा चौंक पड़ी उसका कलेजा कांप उठा।

कड़···कड़···कड़ कड़···।

भयभीत नेत्रों से ऊपर को हाथ जोड़ कर बोली—

'नाथ! मुझे अब अपनी लज्जा बचाने दीजिये। बाधा न डालिये अब मैं आप की शरण में हूँ।

टप···टप···टप टप···।

बड़ी बड़ी बूंदें पड़ने लगीं। उसी घनघोर घटा से घिरे निविड़ में वह घर से निकल पड़ी।

'अब तो नहीं चला जाता।' लथपथ होकर बैठती हुई मनोरमा ने कहा।

हाय नाथ हाय राम···अब प्राण नहीं बचेगा।

चम·· चम·· चम चम···।

पुनः बिजली चमक उठी उससे उसे रास्ता दिखाई पड़ा। वर्षा भी कम हो चली थी। वह ढाढ़स करके पुनः आगे बढ़ी।

अब तो शायद मैं तीन कोस चली आई। अभी और आगे चल कर ही विश्राम करना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि सब लोग पता पा जाएं यह सोचती हुई पुनः आगे बढ़ी।

हवा का एक झोंका आया, बादल उड़ गये, आसमान साफ हो गया। मनोरमा की ऐसी करुण दशा देख कर तारों की आंखों में आंसू की बूंदें टपटपा गई। प्रकृति ने मनोरमा के लिये चांदनी की दीप जला दी ताकि उसे रास्ता साफ दिखायी पड़े। मनोरमा एक पेड़ के नीचे जाकर खड़ी हो गई।

रघुपति···राघव · राजा · राम··।

मनोरमा चौंक पड़ी अब तो शायद सवेरा होने ही वाला है सोचती सोचती मलय के शीतल पवन में सो गई।

× × ×

बावू जी भीख डाल दीजिये, दीन भाव में मनोरमा ने कहा।

'आगे वढ़ो।' रामपुर के किसान सुखदेव ने कहा

'माता भूख लगी है' हाथ फैलाती हुई मनोरमा ने कहा।

किसी का काम करके पेट भरती छिनाल! चली है भीख मांगने। झिझकती हुई एक बुढ़िया ने कहा।

'ले' बासी रोटी देती हुई बुढ़िया की वधू ने कहा!

इसी प्रकार भीख मांग कर जीवन बिताते बिताते मनोरमा के प्रसव का समय भी करीब आ गया।

'आज भीख मांगने नहीं जायगी क्या?' उस विधवा ने कहा जिस के यहाँ मनोरमा रहती थी।

'नहीं मां!'

'क्यों?'

'पेट में पीड़ा हो रही है माँ।' कराहती हुई मनोरमा ने कहा।

सभी रहस्य विधवा समझ गई उसने मनोरमा के लिये उचित प्रबन्ध कर दिया। मनोरमा के लड़का पैदा हुआ और पैदा होते ही मर गया।

'पाप का अन्त भी हुआ तो इतनी दुनियाँ दिखाकर।' कहते कहते मनोरमा का गला भर आया। अब धीरे धीरे मनोरमा पुनः भीख माँगने लगी थी।

'आज भीख नहीं मिली क्या?' उस दयालु विधवा ने पूछा।

'नहीं माँ खाने के लिये काफी है।'

'अच्छा, यह उपली है ले जा कर भोजन पका ले।'

भोजन पकाते समय उसे अपनी बच्ची प्रभा की याद आई सोचने लगी, वह बेचारी कैसे होगी मेरी इस दशा का उसे कुछ भी ज्ञान न होगा। लेकिन मैं आशा करती हूं कि मां उसे अच्छी तरह पालती होगी क्योंकि नानी को नातिन बहुत प्यारी होती है।

भोजन तो तैयार हो गया है? विधवा ने पूछा।

'शायद' दाल चलाती हुई मनोरमा ने कहा।

आओ मां, तुम भी खा लो।

'नहीं हमारा भोजन तैयार ही है।'

'भोजन करके मनोरमा ज़मीन पर ही सोती थी। सोचने लगी अब तो पाप की बला छूटी लेकिन इसी के साथ मेरा संसार भी छूटा। अब इसी प्रकार मांगकर खाते पीते मैके को चलना चाहिये। प्रभा की भी खबर लेनी चाहिये।'

× × ×

रामनाथ बता सकते हो कि इस समय प्रभा कहां है मनोरमा ने पूछा।

'वह तो अपने घर चली गई।'

'कब ?'

'करीब एक महीना हुआ।

'किसके साथ गई।'

'उसके दादा आये थे वही उसे यहाँ से लिवा ले गये।'

'और मां की क्या दशा है ?'

'ठीक तो है। चलो बहन घर पर चलो' रामनाथ ने मनोरमा से कहा।

'आज तो नहीं चलूँगी रामनाथ! कुछ काम है।'

नहीं, चलो बहन।

'नहीं बहन अभी काशी जाना है।'

मनोरमा यह जानती थी कि उसकी बड़ी बहन विमला अपने पति के साथ काशी में रहती है और समाज की विषम परिस्थितियों ने उसकी बहती जीवन-प्रवाहिनी-धारा का रुख बदल दिया। एक वकील के सद्गृहस्थ का द्वार उसे बरबस त्यागना पड़ा और वह वेश्या हो गई है। लेकिन यह नहीं जानती थी कि वह किस स्थान पर रहती है। सोचने लगी, अब कोई आश्रय नहीं है उसी के यहां

चल कर जीवन विताना चाहिये। वहन है उसे मेरी दशा पर दया आ ही जायगी।

'भाई रामनाथ! एक काम करने के लिये कहूँ करोगे।'

'क्यों नहीं वहन।'

'नहीं करोगे।'

'पहले अजमा लो वहन।'

'मुझे काशी पहुंचा दो।

यह कौन सा बड़ा कठिन काम रहा वहन!

'अच्छा कब चलोगे?

'चलो अभी चलें।'

'नहीं'

'तब कब?'

सवेरे उठा जायगा। ठढे में ही पहुँच जाया जायगा। मनोरमा ने कहा।

वास्तव में इतने सवेरे जाने का मन्तव्य कुछ और था। सोचती थी सवेरे अन्धकार रहेगा कोई देख न पावेगा और मैं केशवपुर गांव पार हो जाऊंगी।

रामनाथ...रामनाथ...।

हां बहन!

'उठो चला जाय।'

'चलिये।'

आगे रामनाथ और पीछे पीछे मनोरमा चली जा रही थी।

'प्रभा जाते समय रो रही थी रामनाथ!' मनोरमा ने पूछा।

'हाँ वहन! वह अम्मा कह कर रो रही थी।'

'तब उसके दादा ने क्या कहा?'

वे कहते थे चलो बेटी! तेरी माँ घर पर है।

'यही मकान है।'

'कैसे भेंट होगी ?'

'बगल में सीढ़ी है उसी से ऊपर चली जाओ।'

रास्ता बताने वाली विमला की लड़की मैना थी, जो बाज़ार से सामान लेने जा रही थी।

डर से काँपती हुई मनोरमा सीढ़ियों पर चढ़ी जा रही थी। सोचती थी कहीं कोई बुरा भला न कह दे। अन्त में काफी सीढ़ी पार करके वह ऊपर पहुँची।

सहसा सामने बैठी हुई विमला दिखायी दी। प्रथम वह मनोरमा को पहचान न सकी क्यों कि वह विपत्ति का थपेड़ा खाती खाती काली हो गई थी। नजदीक जाने पर पहचानी और उठकर वह अपनी छाती से लगा ली। मनोरमा सिसकियां भरने लगी।

'बहन धीरज धरो' समझाती हुई विमला ने कहा।

क्या धीरज धरूँ बहन, कुछ कहा नहीं जाता। सिसकती हुई मनोरमा ने कहा।

'तुम इतनी क्षीण क्यों हो गई हो मनोरमा !'

क्या कहूं बहन ! विपत्ति का बोझा सिर पर लिये हुये मैं मारी मारी फिर रही हूं। कोई सहारा देने वाला नहीं। वास्तव में विपत्ति में परछाहीं साथ छोड़ देती है। बहन अन्तिम यह आपकी आशा है।

'कैसी विपत्ति ? मनोरमा !'

'उसे तो बहन तुम यहाँ आने से ही समझ सकती हो।'

मैं जानती थी कि स्नान करने के लिये आई थी शायद भेंट करने आई होगी।

भेंट क्या करूँ बहन ! मेरी तो दुनियाँ ही उजड़ गई। माँग का सिन्दूर ही धुल गया मेरा सुहाग ही लुट गया, कहती हुई मनोरमा फूट फूट कर रोने लगी।

'धीरज धरो बहन ! अभी मैं तो हूँ।' आंसू पोंछती हुई विमला ने कहा।'

अब तो आपके पास आ पहुंची हूँ बहन।'

'सुख से रहो किसी प्रकार का कष्ट न होने पावेगा।'

सामने ही मैना कुछ सामान हाथ में लिये खड़ी दीख पड़ी।

बेटी मैना ! ले जा कर अपनी मौसी को भोजन कराओ'

तीन दिन की भूखी मनोरमा जिसको चलना भी अब कठिन हो चला था लड़खड़ाती हुई रसोयी घर में पहुँची।

'मनोरमा ! तू यहां तक पहुंची कैसे।' विमला ने पूछा।

'पूछती पूछती, ठोकरें खाती खाती' दीन भाव में मनोरमा ने कहा।

'कोई सन्तान भी तो है न ?'

'हां बहन ! एक बेटी है।'

'क्या नाम है ?'

क्या बताऊं ?'

'भला बताओ तो।'

'प्रभा।'

'कहाँ है इस समय ?'

'घर ही पर।'

'कहाँ।'

गोरी गाँव।'

'वही तो शायद तुम्हारा घर भी है।'

'है नहीं बहन ! था।'

ऐसा न कहो।

'क्यों न कहूँ अब तो संसार यही कहता है' दीन भाव में मनोरमा ने कहा।

× × ×

बेटी स्नान कर ले संध्या हो गई श्रृंगार करने का भी समय हो गया है। शौकीन लोग मोजरा सुनने के लिये आते होंगे। विमला ने कहा।

अच्छा मां ! दूसरे कमरे में से मैना ने कहा।

कैसा मोजरा बहन ! चकित भाव से मनोरमा ने पूछा।

'यही तो इस समय की जीविका है बहन !'

'क्या रुपया भी देते हैं ?'

अगर रुपया न देते तो क्या शरीर दुखता है कि बिटिया देह पीटे।

झन, झन ··· झननन झन ···

'यह क्या' मनोरमा के लिये यह आश्चर्यजनक चीज़ थी। वह उस स्थान पर पहुँची जहाँ मैना नाचने जा रही थी।

पुनः झननन ··· झन ···

साथ ही सारंगी और तबले की आवाज़ गूँज उठी सभी स्वर में स्वर मिलाने लगे।

मैना ने तान छेड़ा—

'रात की अकेली श्याम मगवा न छेड़ो।'

एक साथ ही पायल की झनकार गूँज उठी। सबों ने एक तान बजाया।

मैना सजग हो जाओ तीन आदमी आ रहे हैं ड्योढ़ी पर की औरत ने सजग किया।

'कितनी दूर हैं ?'

'अभी नीचे चढ़ रहे हैं।'

सारंगी वाले ने सारंगी के तार पर हाथ फेरा। तबलची ने लय मिलाया मैना थिरक उठी।

'भीतर आ सकता हूँ।' उनमें से एक ने पूछा।

'खुशी से।'

'नमस्ते' मैना ने झुककर नमस्कार किया।

'बैठिये'

तीनों आदमी मसन्द के साहरे बैठ गये। बोले—

'मैना गाना शुरू करो।'

'अभी शुरू हुआ सरकार।' मैना ने कटाक्ष के साथ उत्तर दिया। तीनों को पान देती हुई मैना ने तान छेड़ी—

काली रे बदरिया घेरे जियरा डेराला।
सखी सब छोड़ चली फुलवा न फेंको।
काली रे बदरिया श्याम मगवा न रोको ॥ टेक ॥

तीनों गाने की मस्ती में झूम उठे।

'बराण्डी की बोतल निकालो।' उनमें से एक ने कहा।

छुल छुल छुल ···।

'लीजिये बाई जान।'

'नहीं पहले आप लोग पीजिये।'

'नहीं।'

'ऐसा नहीं होगा पहले आप लोग ···।'

मैना प्याले में बराण्डी उडेल कर बारी-बारी से कोमल कटाक्ष के साथ देने लगी।

एक तान और बीबी जान! लड़खड़ाती ज़बान से तीनों ने कहा।

मैना ने पुनः एक तान छेड़ी—

'यमुना के तीर मोरी झुलनी हे रानी।'

अब रुपयों पर नाच होगा उन में से एक ने कहा।

'नहीं अभी एक तान के बाद।'

'नहीं'

खन·· खन···खननन·····।

फ़र्श पर रुपया बिछा दिया गया।

इस पर नाचो बीबी जान!

मैना रजत के खँडों पर मन्द मुसकान के साथ थिरक उठी, थोड़ी देर में तीनों आदमी मसलन्द पर झूल गये।

मैना ने रुपया इकट्ठा करके अपनी जेब में रख लिया। तीनों उसी भांति फ़र्श पर अचेत पड़े थे। मुंह से गाज चल रहा था नाच बन्द होगया मैंना बगल में बैठकर पंखा झलने लगी।

टन…टन…टन…।

तीन बज गया कहते हुये उन में से एक उठ बैठा।

तीनों को जगाया…… बारी बारी से तीनों होश में आये।

'बाई जान!'

'कहिये'

'अब तो चलना चाहिये।'

'ज़रा पान खा लीजिये' मन्द मुसकान के साथ मैना ने आग्रह किया।

मैना बारी-बारी से पान देती जाती थी हाथ में नोट लेती जाती थी।

टप…टप…टप की आवाज़ में तीनों नीचे उतर पड़े। मैना हँसती हुई फ़र्श पर बैठ गई।

'माँ!'

'आई बेटी।'

आज कितने रुपये……। प्रसन्नता पूर्वक विमला ने पूछा।

'पूरे एक हज़ार।' मन्द मुस्कान के साथ मैना ने उत्तर दिया।

'बहन! क्या इतनी ही आमदनी रोज़ होती है?' चकित भाव से मनोरमा ने पूछा।

'हाँ क़रीब-क़रीब।'

मनोरमा विस्मय में पड़ गई कुछ बोलती न थी।

'मनोरमा, चलो भोजन कर लिया जाय।' विमला ने कहा।

'चलिए बहन।'

'सामने थाली रक्खी है मौसी ने।'

'बेटी मैना नहीं आई।'

'वह तो खा-पी चुकी है।'

'क्या वह श्रृंगार करने से पहले ही खा पी लेती है।'

'हाँ।'

'क्यों।'

'सभी नर्तकियों की ऐसी ही आदत होती है।'

रात के करीब बारह बज चुके थे सब अपनी-अपनी चारपाई पर जाकर सो रही। मनोरमा को रात-भर नींद न आई मैना की आमदनी आश्चर्य में डाले हुये थी। मन में सोचने लगी मेरी प्यारी प्रभा भी होती तो वह भी इसी प्रकार रुपये पैदा करती और मैं भी बैठी बहन की तरह चैन की वंशी बजाती। सोचती हुई सो गई।

× × ×

बहिन···बहिन··· धीरे से सँकोच भाव में मनोरमा ने कहा।

'क्या है? मनोरमा!'

'कुछ माँगूंगी बहन!' मुसकराती हुई मनोरमा ने कहा।

'बोलो।'

'ऐसे नहीं।'

'तब'

'कहो कि अवश्य दूँगी चाहे जो भी हो।'

पुनः मनोरमा संकोच में पड़ गई। सोचने लगी कहीं ऐसा न हो कि बहन इन्कार करदे, रुपये का मामला ठहरा। लेकिन अवश्य माँगूँगी।

'दो सौ रुपया चाहिये बहन।'

इसी के लिये इतनी प्रतिज्ञा करा रही थी।

'बोलो क्या करोगी?'

'कुछ काम है।'

'भला बताओ तो।'

संकोच और लज्जा के मारे कुछ बोलती न थी।

'बोलो मनोरमा!'

क्या कहूँ बहन ! हँसोगी मेरी भावना सुनकर ।

'भला कुछ ।'

मैं प्रभा को भी यहीं पर लाना चाहती हूँ ।

'इस समय वह कहाँ है ?' विमला ने पूछा ।

'शायद घर पर ।'

'कैसे लाओगी ?'

'प्राणों की बाज़ी लगाकर ।'

'देखो खतरे में न पड़ना ।' रुपया देती हुई विमला ने कहा ।

'बहन तेरी दया से मैं ऐसे कितने खतरों को पार कर चुकी हूँ यह तो अन्तिम परीक्षा है मैं अवश्य प्रभा को लाऊँगी ।'

'यहाँ वह क्या करेगी ?'

मैंना बच्ची जो करती है मनोरमा ने कहा ।

'उसकी क्या उम्र है ?'

इस समय वह करीब दस वर्ष की होगी ।

'अकेले ही जाओगी ?'

'हाँ बहन !'

'किसी को साथ कर दूँ ।'

नहीं, मैंने इतना जीवन तो अकेले ही खोया । डबडबायी आँखों से मनोरमा ने कहा ।

'प्रभा की तरफ गाड़ी कब जाती है ?'

'शायद पाँच बजे शाम को ।'

'अच्छा जाती हूँ बहन !' रुपया को कमर में खोंसती हुई मनोरमा ने कहा ।

'जाओ बच कर रहना ।'

नमस्कार करती हुई मनोरमा कोठे पर से उतर पड़ी, स्टेशन की राह ली उसके मन में नाना प्रकार की शंकायें उठती जा रही थीं । सोचती कहीं ऐसा न हो कि कमलासिंह को पता चल जाय । मेरे जीवन की तो

मुझे कुछ परवाह नहीं बेचारी प्रभा पर क्या बीतेगी। उस पर तो ग़ज़ब ही ढह जायगा।

भक ··· भक ··· भक ···

एक टिकट हमें भी चाहिये बाबू जी। दीन भावों में मनोरमा ने माँगा।

चलो अभी तुम्हारा नम्बर बहुत पीछे है एक मुसाफिर ने कहा।

इतने में बुकिंग क्लर्क की निगाह मनोरमा पर पड़ी उसकी दीन दशा को देखकर उसे तरस आगया।

'बोलो कहाँ जाना है ?'

आरा ज़िला सरकार।

छः रुपया दस आने निकालो।

हमें भी दीजिये बाबूजी। दूसरे मुसाफ़िर ने कहा।

'अभी रुको' कड़क कर स्टेशनमास्टर ने कहा।

'अच्छा, सरकार काँपता हुआ वह खड़ा होगया।'

'लीजिये बाबूजी हाथ में रुपया देती हुई मनोरमा ने कहा।

जाओ गाड़ी खड़ी है जल्दी करो सीटी दे चुकी है।

'ईश्वर आपके बाल-बच्चों को सुखी रखे' आशीर्वाद देती हुई मनोरमा आगे बढ़ी।

मनोरमा जल्दी से गाड़ी पर बैठ गई गाड़ी भी तुरन्त ही चल दी।

'बहन तुझे कहाँ जाना है ?' धीमे स्वर में मनोरमा ने पूछा।

'बक्सर' गम्भीर वाणी के साथ वेश्या ने कहा।

'कौन-सा काम करती हो बहन !'

हम लोगों के काम को तो सभी लोग जानते हैं बहन।

'बात मेरी समझ में नहीं आती बहन ! मनोरमा ने पूछा।'

'क्या नर्तकी है ?'

'जी हाँ।'

'और तुम्हारे साथी कहाँ हैं ?'

'दूसरे डिब्बे में है बहन।'

मुझे कुछ पूछना है बहन !

'खुशी से पूछ सकती हैं कहिये क्या आज्ञा है ?'

'आज्ञा क्या है ? एक बात पूछनी है;'

'कहिये।'

'तुम लोगों का जीवन कैसा है ?'

'अच्छा है' मुसकराती हुई वेश्या ने कहा।'

तब लोग घृणा क्यों करते हैं ?'

'अपनी अपनी समझ ... ?'

'कैसे।'

बहन तुम खुद देख सकती हो कि दूसरे के दरवाजे की शोभा बढ़ाने वाली हमी लोग हैं तब कैसे कहा जाय कि सब लोग हम लोगों से घृणा करते हैं।

'बहुत पते की बात कही' हँसती हुई मनोरमा ने कहा।

'जैसे शहर की गन्दगी दूर करने के लिये नालियाँ बनाई जाती हैं उसी से शहर की गन्दगी दूर होती है उसी प्रकार समाज की कलुषित भावनाओं को दूर करने वाली हम लोग हैं अगर हम लोग न होतीं तो मनुष्य काम के वशीभूत होकर समाज में जितनी बुराइयाँ फैलाता जितनों की इज्जत मिट्टी में मिलाता' मन्द मुस्कान के साथ वेश्या ने कहा।

'लोग तुम लोगों के पास जाने में नफरत क्यों करते हैं ?'

'केवल समाज के [illegible] के लिये।'

'यह क्या ऐसा करना अच्छा है ?'

'समाज में रहकर छिपकर चोरी करने से तो अच्छा ही है ?

मनोरमा उस वेश्या के मुँह से कारण को जानना चाहती थी उसे [illegible] पूरी [illegible] की [illegible] में लगाना था वह

वहन से कैसे इन सब वातों को पूछ सकती थी ठहरी भी लज्जा की बात।

'आपको कहाँ जाना है ?' वेश्या ने पूछा ?

'आरा ज़िला।'

गाँव का नाम ?

'गोरी।'

वेश्या चौंक पड़ी, पुनः विस्मित भाव से बोली—

'शायद उसी जगह मैना की मौसी भी रहती है'

'होगी'

'तुम मैना को कैसे जानती हो ?'

वह एक वार हमारे साथ दरभंगा नाचने गई थी। तभी से जान-पहचान है। वह इस समय काशी में सबसे बढ़ी-चढ़ी है।

'अच्छा, बहन ! हमको ज़रा अपने जीवन के सम्बन्ध में बताओ।'

श्रीमती जी ! क्या आप समझती हैं कि हम लोग घर गृहस्थ की औरतो से बुरी हैं ? हम लोगों के पास खुले आम आदमी आते हैं यहाँ आने और रात भर सोने के बदले वे दाम देते हैं। इसको दुनिया में सभी लोग जानते हैं, हम लोग खुले आम सब कुछ करती हैं। सच-सच बताओ बहन ! क्या गृहस्थ की औरतों में छिप-छिपकर प्रेम नहीं होता ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि सौ में पचास औरतें छिपे-छिपे दूसरों से प्रेम करती हैं ! बाकी पचास जो बचीं वे शायद सज्जनता और उम्र की अधिकता के कारण ऐसा न करती हों। समाज में कितनी औरतें ऐसी भी हैं जो छिपे-छिपे अपने बाप, बेटे और भाइयों तक से व्यभिचार करती हैं। लेकिन यह सब काम परदे के भीतर होता है और इसे वे छिपा लेती हैं बस इतना ही हम में और गृहस्थ की औरतों में अन्तर है। हम लोग पतित हो गई हैं इसको भी हम लोग जानती हैं, हम लोग पाप को परदे की आड़ में छिपाकर नहीं रहना चाहतीं।

यह तो समाज के सम्मुख खुला हुआ है और हम लोग अपने को सदाचारी कहती भी नहीं। घर गृहस्थ की औरतें इस प्रकार पर्दे की आड़ में बुराइयों से भरी ज़िन्दगी बिता रही हैं और अपने को सदाचारी बताती हैं क्यों बहन! ठीक है न हँसती हुई वेश्या ने पूछा।

'जो कुछ भी कहती हैं सब सत्य है' मनोरमा ने धीमे स्वर में स्वीकार किया।

'और कहो बहिन।'

"हम वेश्याओं में हज़ार में एकाध ऐसी पायी जाती हैं जो गर्भपात करवाती होंगी लेकिन गृहस्थ की औरतों में पचास फ़ी सदी ऐसी पायी जाती हैं जो बार-बार व्यभिचार करवाती हैं और हमल गिरवाती हैं। असल में ये सब इसलिये ऐसा करती हैं कि उन पर मुसीबत आ जायगी या गरीब हैं पालन-पोषण नहीं कर सकतीं। दूसरा कारण यह भी है कि वे सोचती हैं कि बच्चा पैदा होने से उनकी तन्दुरुस्ती खराब हो जायगी न छाती का दूध नहीं पिलाना चाहतीं वे केवल अपनी इन्द्रियों का ही सुख लेना चाहती हैं।"

'हाँ सो ठीक कही बहन!' दीर्घ श्वास लेती हुई मनोरमा ने

'उसकी क्या उम्र है बहन !'

'करीव दस वर्ष की होगी'

'तब तो बहुत अच्छा है बहन !'

'क्या उसी को लाने जा रही हो ?' मनोरमा चुप होगई कुछ बोली नहीं।

'किस के यहां रखोगी ?'

'मैना की मातहदी में'

'बहुत अच्छा होगा' हुनर भी जल्द ही सीख जायगी।

इतना कहते-कहते वेश्या चुप होगई सोचने लगी उसे अपना पहले का जीवन याद आगया माँ की याद आते ही उसकी आंखों में आँसू छा गये।

'आँखों में आँसू क्यों ? बहन।' मनोरमा ने पूछा।

'आँसू नहीं हैं बहन। मेरे पहले के जीवन की निशानी है।'

कैसा जीवन ?"

'क्या कहूँ बहन ! बुझी आग पुनः सुलगानी होगी।

'बताना होगा।' हठ-पूर्वक मनोरमा ने पूछा।

अच्छा जब इतना आग्रह है तब सुनिये—

मैं देहात की रहने वाली थी, मेरे पिता कई गाँव के ज़िमींदार थे, गृहस्थी अच्छी तरह से चल रही थी, मैं अपने पिता की एकलौती बेटी थी, पिता जी मुझे लड़के की भाँति मानते थे तब मैं करीब साल भर की हुई तभी गांव में एक बार बड़े ज़ोर का प्लेग फैला, पिताजी भी बीमारी में गिरफ़्तार होगये, काफी उपचार हुआ लेकिन वे दुनिया से चल बसे मेरी···

माँ······· गला रुद्ध होगया।

सोच करके क्या करोगी बहन ! होनहार प्रबल है ? मनोरमा ने सान्त्वना दी। केवल मेरी माँ अकेली बची। पड़ोसी चाहते थे जैसे भी हो इसकी सम्पत्ति का स्वामी बनना चाहिये। वे माँ को नाना

प्रकार का कष्ट पहुँचाने लगे। अन्त में माँ जीवन से ऊब गई और जीवन त्याग देना चाहती थी। मैं भी आठ-नौ वर्ष की हो चली थी लेकिन मुझे माँ के विचारों का कुछ भी पता न था। वह मुझ से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहती थी। वह मेरे साथ काशी में कार्तिक की पूर्णिमा का स्नान करने आई, एक जगह मुझे बिठाकर आप लापता होगई। अन्त में मुझे एक बूढ़ी औरत अपने घर ले गई और वेश्या के हाथ बेच दिया। इतना कहते-कहते पुनः उसकी आँखों से आँसू की बूँदें टपकने लगीं। मनोरमा उसे सान्त्वना देने लगी।

'अच्छा, बहन! अब तो मैं इसी स्टेशन पर उतर जाऊँगी।' मनोरमा ने कहा।

'नमस्ते, बहिन!'

मनोरमा गाड़ी से उतर पड़ी और मुसाफिरखाने में जाकर बैठ गई। उसका दिल रह-रहकर धड़क रहा था। सोचती थी कहीं ऐसा न हो कि गाँव का कोई यहाँ पर हो और मुझे पहचान न जाय। भेद खुल जाय, बना बनाया काम बिगड़ जाय, जीवन से भी हाथ धोना पड़े। अच्छा जब ओखली में सिर दिया है तब मूसलों से क्या डरना है। वहाँ पर बैठी-बैठी दिन बिताने लगी। उसे तो आश्रयदायिनी केवल गंगा ही थी।

७

बाबू जी ! घड़ी में दस बज गया, रात का समय है गाड़ी भी आने ही वाली है, तैयार हो जाना चाहिये। अपने मालिक को जगाते हुये नौकर ने कहा।

'दस बज गया' मनोरमा ने मन ही मन सोचा।

'अब तो चलना चाहिये सब लोग सो गये होंगे, सोये भी न होंगे तो खेतों से अपने-अपने बाल-बच्चों में लौट गये होंगे।'

'काँपती हुई मनोरमा आगे बढ़ी उसके पैर भय के कारण ठिकाने नहीं पड़ते थे वह मन में सोचती थी मैंने जीवन में कभी भी ऐसा काम नहीं किया है इधर का रास्ता भी जाना-पहिचाना नहीं है। रात को मैं किसी से भेंट भी नहीं करना चाहती।'

'अच्छा चलो देखा जायगा।'

जागते रहो···जागते रहो······।

'शायद अब मैं किसी गाँव के करीब पहुँच गई हूँ।' मनोरमा ने सोचा।

कड़···कड़···कड़ कड़······।

मनोरमा डर के मारे पृथ्वी पर बैठ गई उसके शरीर का खून भय के मारे सूख गया।

चम·· चम···चम चम······।

'वह छोटा-सा घर दिखाई दे रहा है, बेचारी बिजली राह तो दिखा रही है लेकिन वह भी काल की छोटी बहन है।'

सीता राम ' सीता राम'' सीता राम'''''' ।

'शायद यह तो किसी साधु की कुटी है चलो चलें रात इसी महात्मा के यहाँ बितावें।'

'मैं इसमें ठहर सकती हूँ!' दीन भाव से मनोरमा ने पूछा!

'कौन ?'

'एक दीन अबला।'

इतनी रात को कहाँ से बच्चा' कहता हुआ साधु कुटी के बाहर निकला।

मनोरमा काँपती रही उसके कपड़े भीग गये थे, वे शरीर में लिपट गये थे।

'बच्चा! अन्दर चले आओ।'

मनोरमा सकुचाती हुई कुटी के भीतर चली गई वैसे ही भीगे वस्त्रों में जमीन पर सो गई, भय के कारण रात भर नींद न आई दाँत भी कट-कट बज रहे थे।

'क्या आज्ञा है ?' महात्मा जी !

'अभी नहीं समझ पायी ।

'नहीं' महात्मा जी ।

साधु लपककर मनोरमा का हाथ पकड़ने के लिये आगे बढ़ा । वह सहमकर बैठ गई ।

महात्मा जी'''महात्मा जी'''किसी ने बाहर से पुकारा ।

एक अर्चना है महात्मा जी ! दीन भाव में एक किसान ने कहा ।

कहिये ।'

'मेरे यहाँ प्रीति भोज है बिना आप के भोग लगाये कोई नहीं खायेगा' ।

इस समय रात को ।

हाँ महाराज यही समय है ।

'चलो आ रहा हूँ ?

'नहीं साथ ही ले चलूँगा ।'

मनोरमा के दिल की धड़कन और भी बढ़ती ही जा रही थी सोचती थी कहीं ऐसा न हो कि वह कुटी के भीतर चला आवे, नहीं तो सभी भेद खुल जायगा मेरा सभी फैलाया जाल टूट जायगा ।

'अब तो मैं चलूंगी महात्मा जी ।'

'अभी'

दूर जाना है भगवन ।

अच्छा, केवल इतना ही साधु कह सका ।

'महात्मा जी यह कौन थी ? उस आदमी ने पूछा ।

'यह एक दुखी औरत थी दवा के लिये आई थी' बात बनाते हुये साधु ने कहा ।

साधु खड़ा-खड़ा तब तक देखता रहा जब तक मनोरमा आँख से ओझल न होगई । उसके मन की कलुषित भावनायें मन के भीतर ही रह गईं । मौन-मौन प्रेमालाप करता ही रह गया ।

× × ×

पीना है तब कहाँ अपना स्थान बताऊँ। भीख मांगकर अपना पेट पालती हूँ मां।' दीन भाव से मनोरमा ने कहा।

'अच्छा मेरे यहाँ अब छिप कर जीवन बिताओ।'

'बहुत अच्छा माँ।'

'बच्ची प्रभा कहाँ है?' बुढ़िया ने याद किया।

'पता चलता है दादी! वह घर पर है।'

'कितना समय हुआ तुम से अलग हुये?'

'दो वर्ष।'

'क्या वह तुम्हारे साथ नहीं आई?'

नहीं उसके दादा ने नहीं आने दिया।

'वह अब शायद तुम्हारी याद भूल भी गई होगी।

'शायद'

× × ×

करीब पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये। एक दिन मनोरमा ने कहा--

'दादी।'

'क्या है?'

मैं अपनी लाडिली प्रभा से भेट करना चाहती हूँ।

बहुत कठिन काम है बिटिया! तुम तो स्वयं जानती हो कि लोगों की तुम्हारे प्रति क्या भावना है।

'तब कैसे...?

'कैसे बताऊँ?'

'बूढ़ी दादी! भेट करा दो, मैं तुम्हें सौ रुपये दूंगी।'

'अच्छा प्रयत्न करूंगी।'

दोनों बातों की सरसता में बहुत दूर की कल्पना कर बुढ़िया ने कहा--

'घर देखना मनोरमा। मैं गोरी गाँव जा रही हूं पता लगाऊँगी?'

'जाओ माँ।' प्रसन्न मुख से मनोरमा ने कहा।

'अच्छा, अब तो दादा के आने का भी समय हो गया है माँ से कह देना कि कल शाम को आऊँगी अगर शाम तक न पहुँचूँ तो समझ ले कि मौका नहीं मिला।' इतना कहते कहते प्रभा रोने लगी।

रोओ न बेटी, अवश्य भेंट हो जायगी आना भूलना मत।'

यहाँ बड़ी तकलीफ हो रही है दादी ! तुम तो स्वयं सोच सकती हो कि बिना माता के लड़की की क्या दशा होती है ?

'घबराओ न बच्ची अब दूर हो जायेगी।'

'अच्छा अब' अब छुट्टी दो बच्ची ?'

'जाओ दादी' माता को धीरज बंधा देना घबड़ाने न पावे।'

अब प्रभा को कहाँ चैन। उसे तो एक एक घड़ी एक एक वर्ष के समान बीतती थी वह घर का काम-काज तो करती थी लेकिन उसका मन उसकी माता के पास था। सोचती, माता बेचारी क्या सोचती होगी। भगवान सूर्य तुम डूब जाओ, आज का दिन तो पहाड़ के समान प्रतीत हो रहा है।

'दादी, ईंधन पानी इकट्ठा हो गया है दिन भी करीब है। मैं खेलने जा रही हूँ धीमे-से प्रभा ने कहा।

'देखो पश्चिम से घटा घिरती आ रही है। उम्मीद है पानी भी खूब पड़ेगा। तू कहाँ खेलने जायगी ? श्यामा दादी ने चिड़चिड़ाते हुये कहा।'

'अच्छा, दादी दूर नहीं जाऊँगी केवल माया के घर जा रही हूँ।'

'जाओ, अपने मन की करो।'

हँसती हुई प्रभा घर के बाहर निकल गई। यह तो केवल खेलने का बहाना था।

नन्हीं नन्हीं बूंदें पड़ रही थीं, बिजली चमक रही थी; अपना हाथ भी नहीं दिखायी देता था। ठंडी हवा भी चल रही थी। रह रह कर पपीहा भी बोल उठता था। ऐसी भयंकर परिस्थिति भी प्रभा को डरा न सकी। ऐसी विकट परिस्थिति में उसने अपने को भगवान के ऊपर छोड़ दिया।

देखो माँ ! शायद प्रभा आई है, दरवाजे पर जैसे किसी लड़की के पुकारने की आवाज आ रही है। बुढ़िया के आनन्द का ठिकाना न रहा। वह जल्दी जल्दी दरवाजे पर आई। प्रभा खड़ी थी उसके दांत सर्दी से कड़ कड़ा रहे थे।

'बेटी इतनी रात को ?' चकित भाव में बुढ़िया ने पूछा।

'क्या करूँ दादी ! मौका नहीं मिला।'

'अच्छा' अन्दर चलो कपड़े बदलो। देखो तुम्हारी माँ है कि नहीं।'

'तीन डग में प्रभा अपनी मां के पास पहुँच गई।'

प्रभा को देखते ही मानो मनोरमा में पुनः जीवन आ गया वह मानो अपने खोये प्राण को पुनः पा गई। प्रभा माँ से लिपट कर रोने लगी। पुनः सान्त्वना देती हुई मनोरमा ने कहा—

'बेटी ले मेरी धोती है अपना कपड़ा बदल ले।'

प्रभा आँसू पोंछती हुई उठी और कपड़े बदलने लगी मनोरमा खड़ी खड़ी एकटक प्रभा की ओर देख रही थी उसकी आंखों में आंसू डबडबाये थे।

× × ×

'प्रभा कहाँ है ? कमलासिंह ने अपनी औरत से पूछा।

'वह तो हम से खेलने के लिये कह कर गई थी अभी नहीं आई।'

'तू ने ऐसे में उसे क्यों जाने दिया ?'

'उसने कहा पड़ोसी माया के घर जा रही हूँ।'

रात के करीब ग्यारह बज चुके थे। फिर भी प्रभा का कहीं पता न चला धीरे धीरे ठाकुर साहब ने सारा गाँव छान डाला अन्त में वृद्ध अहीर के लड़के ने कहा—

वह तो करीब तीन घण्टे हुये बरसते पानी में उत्तर की ओर भागी चली जा रही थी मैंने पूछा, लेकिन उसने कोई भी ठीक उत्तर न दिया।

'ठीक कहते हो ?'

बुढ़िया हँसती हुई मकान के भीतर आई। मनोरमा के पास कोठे पर पहुँचकर बोली—

'बिटिया, बड़ी सख्त तलाशी हो रही है इस समय कमलासिंह भूखे शेर की भांति खूँखार हो गये हैं। क्षण भर में मेरा सर्वस्व लुट जाने वाला था, भगवान ने बचा लिया।' अभी मनोरमा काँप रही थी बोली—

'अब क्या होगा माँ!'

'घबड़ाओ नहीं मनोरमा! सब ठीक हो जायगा।'

'जिस तरह हो माँ यहाँ से रातों रात भाग जाना चाहिये हमें छिपे छिपे केवल स्टेशन तक पहुँचा दो दादी अब इसके सिवाय दूसरा उपाय नहीं है। वे अभी अपने गाँव में ही खोजते होगे। तब तक हम लोग स्टेशन तक पहुँच जायँगी।' मनोरमा ने कहा।

'ऐसा न हो कि कमलासिंह के आदमी स्टेशन पर भी हों' बूढ़ी मद्धो ने कहा।

'ठीक कहती हो दादी। तब क्या होना चाहिये?'

'एक उपाय है'

'क्या?'

'सब लोग नौजवान का भेष बनाओ और मैं सिर पर गठरी रख कर तुम्हारा नौकर बनूँ। तब शायद कोई न पहचान पावे।'

'ठीक कहती हो माँ।' मनोरमा ने मन्द मुसकान के साथ स्वीकृति दी।

मनोरमा जल्दी जल्दी उस घोर निविड़ में पुरुष का भेष बनाने लगी। उसने अपनी प्रभा को भी लड़के की पोशाक पहना दिया। बूढ़ी दादी ने भी नौकर की पोशाक पहन ली।

सब अपनी अपनी पोशाक बनाकर ठीक हो गईं। वे सब जीवन में वह काम करने जा रही थीं, जिसको शायद आज तक किसी ने नहीं किया था।

'तुम नहीं चलोगी क्या दादी !' प्रभा ने पूछा।

चलूँगी बेटी ! पहले चलो तो।

'दादी तो साथ नहीं आ रही हैं माँ !' प्रभा ने पूछा।

छोटी प्रभा को क्या व्यावहारिक ज्ञान, उसे क्या पता कि तीन आदमी के साथ कहीं प्रस्थान नहीं करना चाहिये।

'चलो, इस बगीचे से सीधे चला जाय, उधर कहाँ जा रही हो' बुढ़िया ने कहा।

'मेरा देखा रास्ता नहीं है दादी, तुम्हीं आगे आगे चलो ?'

'अब तो इस घुटने भर पानी में नहीं चला जाता माँ।' प्रभा ने दुःखी मन से कहा।

'देखो बच्ची स्टेशन पर माँ मत कहना। वहाँ पिता जी कहना समझी न।' मनोरमा ने कहा।

'अच्छा'

'आओ तुम्हारी उँगली पकड़ लूँ।' मनोरमा ने कहा।

प्रभा बगल से चलने लगी मनोरमा उसकी उँगली पकड़े हुये थी। बूढ़ी दादी भी लाठी के सहारे टेकती चली जा रही थी।

'इधर तो गाँव पड़ेगा कुत्ते भूँकने लगेंगे' मद्धो ने कहा।

'तब'

'चलो इधर से चला जाय' कहती हुई बुढ़िया ने रास्ता बदल दिया।

'इधर तो कमर भर पानी है दादी।'

'पानी मत देखो मनोरमा, धीरे धीरे चली आओ। इस समय बड़ी विकट परिस्थिति में हैं।'

'क्यों ?'

'देखो, वही गोरी गाँव की टिमटिमाती बत्ती दिखाई दे रही है। जिस तरह भी हो इस सफर को पार करो।'

'माँ मेरे तो 'गले भर' पानी हो गया'-सिसकती हुई प्रभा ने कहा।

टिकट कटाये। मनोरमा प्रभा को लेकर गाड़ी में बैठ गई। सौ रुपये का नोट बुढ़िया को देती हुई मनोरमा ने कहा—

'देखना दादी जो गलती हुई हो उसे क्षमा करना। मैंने आपको काफी कष्ट दिया।'

सब क्षमा है बेटी! भगवान् तुझे कुशल से रखे।' आशीर्वाद देती बुढ़िया लौट पड़ी।

× × ×

'देख बेटी! कोई आ रहा है सीढ़ी पर किसी के पैर की आवाज हो रही है।'

'अभी नीचे है,' मैना ने कहा।

'दरवाजा खोलो, दरवाजा खोलो, धीमें से मनोरमा ने कहा।

'कौन है?'

'पहले खोलो तो।'

'मौसी! आप हैं, प्रसन्न मन से मैना ने कहा।

'क्या बेटी! मजे में?'

'हाँ मौसी!

दूसरे कमरे से विमला भी निकल आई और बोली—

'काफी सयय बिता दिया मनोरमा!'

'बड़ा कठिन काम भी तो था बहन!'

'यही बच्ची है जिसके सम्बन्ध में कह रही थी।'

'हाँ बहन!'

'बस यही एक लड़की है या और कोई।'

'बस यही एक जीवन का सहारा है।' दुःखी मन से मनोरमा ने कहा।

'बताओ बच्ची तुम्हारा क्या नाम है?'

'प्रभा।'

'गाना गाओ बच्ची।'

'गाती हूँ बहन।'

प्रभा खाँस खाँस कर अपना गला ठीक करने लगी उसे अब मैना के द्वारा कुछ गाने का ढंग भी मालूम हो गया था। उसने तान छेड़ी—

नई नई टहनियाँ वसन्ते वहार की।
फूल गई बगिया घुमन लागे भौंर,
काली रे कोइयिया चुमन लागि बौर,
उठ गई छतियाँ मिलन है रे यार की ॥ टेक ॥

खिलखिला कर मैना हँस पड़ी और बोली—

गा तो गई बहन! जानती हो छतियाँ कब उठती हैं?

'क्या जानूँ?'

कल जितना मैंने बताया उतना नाचना आता है।

हाँ बहन?

'नाचो।'

झन..... झन

'और'

'कैसे?'

'भूल गई।'

'शायद।'

मैना ने उठ कर पुनः उसे नाच दिखाया और बोली—

'फिर नाचो।'

झन...झन.. झननन...झन......

'अब ठीक है बस करो, याद रखना।'

माँ अच्छा होता कि मौसी को रुपया देकर प्रभा को खरीद लेती। यह आगे चलकर एक बहुत ही प्रसिद्ध नर्तकी होगी। चूको मत। पीछे पछताना होगा इसका गाना सुनो न कैसा स्वर है कैसा गाने का ढंग है।

'कितने रुपये पर तय किया जाय।'

९

हायराम···हायराम···हायराम···।

'क्या है ? भाई कमलासिंह ।'

क्या कहूँ भइया ! छाती पीटते हुये ठाकुर मौन हो गये। उनकी आँखों से आँसू की बूँदे टपक रही थीं।

'क्या बात है ? भला सुनूँ तो।'

एक ही लाल तो रह गया था। वह भी·····ठाकुर साहब फूट फूट कर रोने लगे।

'धीरज धरिये ठाकुर साहब !'

'धीरज कैसे धरूँ ? किसके सहारे ?'

क्या कीजियेगा, किसी का वश है। काल के आगे किसी की नहीं चलती। काल के हाथ कमान तो क्या बुड्ढा क्या जवान ?

हाय लाल···हाय लाल···कहते हुये ठाकुर कमलासिंह पुनः अचेत हो गये। मुखिया साहब ने उन्हें उठाया और वे होश में आये।

'लड़के को क्या हुआ था ?'

हुआ क्या था ? अभी पढ़कर आया था प्यास लगी थी। पानी पीकर चारपाई पर सो गया। उसकी माँ जब भोजन करने के लिये जगाने गई तब वह इस दुनिया में न रहा।

'कहीं डर तो नहीं गया था ?' मुखिया साहब ने कहा।

'कलेजे में पीड़ा हो रही है।' कराहती हुई श्यामा ने कहा।

'क्यों ?'

'न जाने क्यों ?'

'बढ़ता ही जा रहा है।'

देखते ही देखते ही श्यामा चारपाई पर अचेत हो गई। उसे रुक-रुककर साँस चलने लगी। कमलासिंह घबड़ा गये, उसके सिर को गोद में रखकर बोले—

'अभी और दुःख लिखा है भोगने को क्या ?'

श्यामा का दन्तहीन मुख एकाएक खुल गया उसके मुख से एक आह निकल गई।

× × ×

भगवान ! अब जीवन का अन्त कर दो, दुःख सहा नहीं जाता कहाँ छिपे हो नाथ ! अब तो सुनलो देर न करो। चारपाई पर पड़े हुये दुःख से कराहते हुये कमलासिंह ने कहा।

'अभी क्यों ऊब गया पापी ! अभी तो तेरे पाप के नरक का श्रीगणेश है। इतने ही में क्यों ऊब गया पापी, हत्यारे, निर्मम विलख न। अभी तुझे और दुनिया देखनी है। तू अभी संसार से नहीं चलेगा। तू संसार से कुछ लेकर जायगा, और संसार को कुछ देकर जायगा। तू यह भी देख ले कि जिसके लिये तू ने महा अनर्थ और पाप किया वह भी इसी पृथ्वी पर रह जायगा।' महेन्द्रप्रताप की आत्मा ने भूत रूप में धिक्कारते हुये कहा।

'एँ' चौंकते हुये कमलासिंह ने कहा।

'कौन मुझे धिक्कार रहा है ?'

मैं हूँ पापी।

'आप कौन ?'

'भूल गया।'

'मैं नहीं पहचान रहा हूँ।'

'क्यों पहचानेगा ?'

'साफ़-साफ़ बताइये !'

जिसकी तू ने बेकसूर हत्या की पापी ! वही है। इतने से भी तुझे सन्तोष न हुआ और वह कुकर्म किया जिसको शायद ही किसी ने संसार में किया हो।

'क्षमा कीजिये !'

'क्षमा करने वाला कोई और है पापी !' आत्मा ने कहा।

वह कौन भगवान !

जिसको तू ने संसार की खाक छनाई, वेदीन किया, जिसका सतीत्व बिगाड़ा। इतना कहते-कहते आत्मा मौन हो गई।

विपत्ति से जर्जर कमलासिंह ने सोचा ऐसी—अवस्था में मैं कहाँ मनोरमा को पाऊँगा वह संसार में शायद ही हो। कैसे मैं उससे क्षमा-याचना करूं। असम्भव है मेरे दुःख का दूर होना। एकाएक उसके मुख से निकल पड़ा—

'मनोरमा···प्रभा' वे पुनः चिन्ताओं में निमग्न हो गये।

'भाई साहब ! कोई ऐसी वेश्या बताओ जो अच्छी नाचती-गाती हो।' ज़मींदार राममनोहरसिंह ने पूछा।

'है तो भाई ! लेकिन बहुत अधिक दाम लेती है।' सेठ दुलीचन्द ने उत्तर दिया।

'रुपये की कोई परवाह नहीं, नाच अच्छा होना चाहिये।'

'अच्छा।'

'क्या नाम है ?' ज़मींदार साहब ने पूछा।

'प्रभा'

'कहाँ रहती है ?'

'मेरे घर में।'

'तब तो कुछ कम रुपये पर ही ठीक हो जायगी।'

'देखा जायगा।'

आगे-आगे सेठ दुलीचंद और पीछे-पीछे जमींदार साहब प्रभा वेश्या के कोठे की ओर रवाना हुये।

'प्रभा।' दुलीचंद ने पुकारा

'कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है ?' मनोरमा ने कहा।

'ये तो सेठ जी हैं' प्रभा ने कहा।

'कहिये सेठ जी ! क्या आज्ञा है ?' प्रभा ने मीठी आवाज़ में कहा।

'ज़मीदार साहब के यहाँ शादी पड़ी है।'

'तब।'

'तुम्हारा नाच ठीक करना चाहते हैं।'

'तो जैसी आज्ञा हो।'

'कितना रुपया लोगी ?' सेठजी ने पूछा।

'ग्यारह सौ रुपया।'

नहीं कम करो। सेठजी ने कहा।

अच्छा आप कहते हैं—

'तब एक हज़ार रुपया लूंगी, अब इससे कम नहीं होगा।'

'कहिये जमीदार साहब क्या राय है ?'

'सब ठीक है।'

सही में लिख दिया गया सेठजी। और ज़मीदार साहब कोठे पर से उतर पड़े।

बेटी प्रभा ! लड़कपन ही से तेरी हार्दिक प्रेरणा थी कि नाचूँ और गाऊँ उससे रुपया पैदा करके जीवन बिताऊँ।

'कैसे माँ।'

एक बार तू मेले में गई थी। वहाँ वेश्या का नाच हो रहा था। लोग उसके गाने पर मुग्ध थे। पुरस्कार रूप में रुपये देते चले आ रहे थे। तेरा मन भी उसी ओर फिर गया। तेरी प्रबल इच्छा हो गई कि मैं भी उसी प्रकार नाचूँ गाऊँ और रुपया पैदा करूँ। वास्तव में तेरे लड़कपन की कल्पना सत्य हो गई।

माँ, अब की जो रुपया आता है उससे मौसी का कर्ज़ा अदा कर दो।

'बिटिया मेरी भी यही इच्छा है।' कहती हुई मनोरमा ने हाँ में हाँ मिलाई।

काशी की वेश्याओं में प्रभा की धाक जमी हुई थी। सब में यह प्रचार हो गया था कि प्रभा का नाच रुपयों पर होता है वास्तव में बात सत्य थी, प्रति दिन की आमदनी प्रभा की पाँच सौ रुपये थी।

'बेटी प्रभा! देख जमींदार की शादी का समय भी करीब ही होगा।'

'कल ही है।'

'ले सामान ठीक करले।'

सब सामान ठीक है। केवल एक साड़ी खरीदनी है।

'चलो, शाम को ले ली जायगी।'

× × ×

भाई रामयश! नाच देखने चलोगे? विद्यार्थी रामगोपाल ने कहा।

कहाँ है?

'जमींदार साहब के यहाँ हो रहा है।'

'अच्छा है?

एक हज़ार रुपये की आ रही है। इतने से ही समझो की अच्छी है या बुरी।

कब है?

आज ही।

'अच्छा, चला जायगा।'

'घर पर आओगे?'

'आ जाऊँगा।'

शाम को क्या कहना था। जिधर से देखिये उधर से आदमियों की भीड़ आती हुई दिखायी दे रही थी।

बाजे बजते-बजते ज़मींदार साहब के दरवाज़े पर हज़ारों की भीड़ इकट्ठी हो गई। हँस मुख चेहरा, गौर वर्ण, अपने कटाक्ष से सबको

बेहोश कर देने वाली प्रभा भीड़ में उठ खड़ी हुई। सारंगी और तबलची ने तान मिलाया प्रभा ने तान छेड़ा—

'पनघटवाँ न छोड़ो श्याम बावरी अकेली।'

श्रोतागण मुग्ध हो गये, आलाप में पवन की गति भी मंद पड़ गई। चारों ओर से वाह-वाह की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। पुरस्कार में नोटों के बण्डल निकल-निकल पड़े। देखते ही देखते प्रभा का मनीबेग रुपयों से भर गया। रात के करीब तीन बज गये। भीड़ अभी जमी थी।

'अच्छा, अब सोना चाहिये, ज़मींदार साहब ने कहा।

सभी श्रोतागण स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आये। काफ़ी रात चली गई, कहते हुये अपने-अपने घर की राह ली।

प्रातः काल बारात लौटने को तैयार हो गई। सब लोग अपनी-अपनी सवारी ठीक करने लगे।

'प्रभा कैसे चलोगी ?' ज़मीदार साहब ने पूछा।

'गाड़ी से ही जाने का विचार है।' प्रभा ने कहा।

प्रभा अपनी माँ के साथ बाजे वालों को साथ लेकर घर को रवाना हो गई। गाड़ी में काफ़ी भीड़ थी लेकिन संयोग से प्रभा ऐसे डिब्बे में पहुँच गई जिसमें केवल दो तीन यात्री बैठे थे।

बाई जान ! कहाँ से आ रही हो ? एक विद्यार्थी ने पूछा।

'यहीं पास से ही।'

'क्या जमीदार साहब के यहाँ आयी थीं। नाच हुआ था ?'

'जी हाँ।'

'आपका कहाँ स्थान है ?'

'काशी।'

दोनों विद्यार्थी आपस में उस के नाच की तारीफ़ करने लगे।

'प्रभा, कुछ अपनी जाति के सम्बंध में बताओ।'

'क्या बताऊँ भाई साहब। समाज नौजवानों से सभी बातें छिपा कर रखना चाहता है, मैं इस बात को पसंद नहीं करती। मैं तो सब सत्य रूप में तरुण समाज के सम्मुख रखना चाहती हूँ। समाज कुछ विषयों को बताना ख़तरनाक समझता है लेकिन मैं इसके बिल्कुल विपरीत हूँ। मेरे समझ में अज्ञानता ही बुराई का घर है। हम वेश्याओं के वास्तविक जीवन के रहस्य को समझ कर और उसका मूल कारण समझकर समाज का क्रोध और घृणा बिल्कुल विपरीत हो जायगा। वे हम लोगों को क्रोध और घृणा की दृष्टि से न देखकर उन धर्म के स्तम्भों और पुरुषों को देखने लगेंगे, जो वेश्या-वृत्ति के मूल कारण हैं ?'

'कृपा करके बाई जान हम लोगों को रहस्य समझा दीजिये ?'

'जाने दीजिये लेकर क्या कीजियेगा।'

'नहीं, बता दीजिये।'

'एक अफ़सोस ही करोगे भाई साहब ?'

'अफ़सोस होगा तो क्या ?'

अच्छा, आप लोगों का आग्रह है तो सुनिये—

मछुआ बाज़ार, लोअर चितपुररोड के पीछे का मुहल्ला, सोनागाछी, एडेन गार्डन, थियेटर, ग्रील पार्टी आदि जगहों की वेश्याओं की दशा याद आते ही आँखों से खून के आँसू टपकने लगते हैं। उनकी दुर्दशा देखते ही कलेजा फट जाता है। केवल कलकत्ते शहर की वेश्याओं की गणना १८११ की मर्दुम शुमारी से १४७११ बतायी जाती है कलकत्ते में २० वर्ष से ४० वर्ष उम्र के भीतर जितनी औरतें पायी जाती हैं उनमें बारह औरतों में एक वेश्या का अनुपात आता है। बारह वर्ष से बीस वर्ष की औरतों में सौ में छः वेश्यायें पायी जाती हैं। १० वर्ष से कम उम्र की वेश्यायें वहाँ १०८६ पायी जाती हैं।

यहाँ पर प्रथा पाई जाती है कि जो लड़कियां आठ-दस या इससे भी कम उम्र की हैं वे तीन लड़कियाँ पानी में फूलने वाली लकड़ी के

पास टब में बैठायी जाती हैं। जिससे वे पुरुष के समागम के लिये तैयार हो जाय।

'राम राम राम, एक साथ ही दोनों विद्यार्थी कह उठे।

'यह सब तुम्हें कैसे पता ?'

'अपने समाज के लोगों से।'

'और भी कुछ कहो।'

'सब सुनकर क्या कीजियेगा ? इतने से ही समझ जाइये हम लोगों का जीवन !

'अच्छा प्रेम है तो सुनिये।'

केवल कलकत्ते शहर में ही ऐसा नहीं पाया जाता, बल्कि आप करीब-करीब सभी शहरों के बाज़ार और चौक में ऐसा पाइयेगा। जैसे लाहौर की "अनारकली, लखनऊ का खास चौक, बम्बई का ह्वाइट मार्केट, और दिल्ली का काठ बाजार। कहाँ तक कहा जाय, तीनों लोक से न्यारी पापनाशिनी काशी नगरी में सब जगहों से अधिक वेश्यायें पायी जाती हैं। वृन्दावन, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार आदि स्थानों में भी वेश्याओं की भरमार पायी जाती हैं।

हाय रे समाज, हाय रे नारी दशा, हाय रे धर्म, तेरा कहाँ तक रहस्य खोला जाय। भगवान ही इसका उद्धार करेंगे। प्रमाण स्वरूप कलकत्ते शहर में १२४१६ वेश्यायें थीं जिनमें १०४६१ हिन्दू ही थीं। जिस समाज में दस वर्ष से भी कम उम्र की लड़कियों के साथ भी व्यभिचार करने में मानव समाज नहीं हिचकता, धन्य है उस समाज को, उस मानव को जो ऐसा करने में अपनी वासनाओं की तृप्ति मानता है। वास्तव में वे छोकरियां भी तो उन्हीं लोगों में से किसी न किसी की बहिन बेटियाँ होंगी।

'क्या विधवाओं के कारण ही वेश्याओं की संख्या बढ़ रही है ?'

'ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता; लेकिन अनुमान तो ऐसा ही किया जाता है।' प्रभा ने उत्तर दिया।

'इस समय विधवायें होंगी कितनी ?'

ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता; लेकिन पता चलता है कि इस समय २ करोड़ ४४ लाख के करीब विधवायें हैं।

'सिर्फ़ भारत में ?' अचम्भे के साथ विद्यार्थी ने पूछा।

'हाँ भाई साहब ! सिर्फ़ भारत में।'

'तब भला कैसे उद्धार होगा ऐसे समाज का। क्यों न व्यभिचार और वेश्याओं की संख्या बढ़े। अफ़सोस करते हुए दोनों विद्यार्थियों ने कहा।

'अभी कुछ और बताओ।'

'नहीं, अब कुछ नहीं।'

'बताना होगा ?'

जब आप लोग विवश करते हैं तो कहती हूँ सुनिये—

वेश्याओं का होना केवल विधवाओं पर ही निर्भर नहीं है। वह तो उससे भी सीमा लाँघ गया है। कहाँ तक कहा जाय, धर्म के केन्द्रों में भी इसका होना खुलेआम पाया जा रहा है।

'प्रमाण दीजिये।' विद्यार्थी ने पूछा।

दक्षिण भारत में ऐसी प्रथा पायी जाती है कि लड़कियाँ जन्म के बाद ही मन्दिरों में प्रतिमा के निमित्त चढ़ा दी जाती हैं। उन्हें लोग विभूतिन कहते हैं। वे अकसर भारत के सभी तीर्थ-स्थानों में घूमा करती हैं भला इससे बढ़कर कौन-सा खुला व्यभिचार हो सकता है।

ऐसा क्यों हो रहा है ?'

'समाज के अत्याचार से।'

'अत्याचार कैसा।'

समाज का अत्याचार नहीं कि पुरुष अपनी कामवासना की तृप्ति के लिये स्त्री के होने पर और न होने पर दोनों दशा में वह दूसरी औरत से शादी कर सकता है अपने मनोवांछित कामवासना की तृप्ति कर सकता है। क्या नारी-समाज को यह अधिकार नहीं कि पुरुष के मर

जाने पर दूसरे पुरुष से शादी करे या एक पति के रहते हुये दूसरे पति से शादी करे तब तो समाज वाले पाप समझते हैं, केवल ऐसा अत्याचार पुरुष इसलिये करता है कि वह अबला है कर ही क्या सकती है। मनमाना उनके लिये जो चाहो सो नियम बना दो।

'प्रभा की ऐसी तर्क-भरी बात सुनकर दोनों विद्यार्थी मुसकराने लगे। प्रभा ने सोचा अब इससे अच्छा मौका नहीं मिलेगा रहस्य खोलने का। कह ही डालूं :—

वेश्याओं की वृद्धि का कारण आर्थिक-समस्या भी है। मनुष्य अपने पेट की ज्वाला को किसी न किसी रूप में शान्त कर सकता है लेकिन अबला जाति के लिये कोई साधन नहीं। उसके पास कोई दूसरा उपाय नहीं कि वे अपनी क्षुधा को शान्त कर सके। उनके पास केवल नाचना गाना या वेश्या-वृत्ति की शरण लेने के और कोई उपाय नहीं।

इसका कारण है समाज का अत्याचार।

'अब सुनते सुनते जी ऊब गया प्रभा।'

'रहने दीजिए कहती-कहती प्रभा चुप हो गई।'

दोनों युवक अपनी पेशानी का पसीना पोंछने लगे और जम्हाई लेने लगे सहसा बोल उठे—

'वाह रे समाज और हिन्दू जाति।'

'अब तो शायद आगे यही बनारस कैण्ट ही पड़ेगा।' एक विद्यार्थी ने कहा।

'हाँ कैण्ट ही है,' प्रभा ने कहा।

'तो क्या प्रभा तुझे यहीं उतरना है ?'

'हाँ, भाई साहब।'

अच्छा, भाई साहब! नमस्ते कहती हुई प्रभा अपनी माँ के साथ गाड़ी से उतर पड़ी।

११

'बाबू जी ! दो पैसे दे दीजिए।'

'चल फेरी ले, चला है भीख माँगने।'

दन्तहीन मुख से बुड्ढा पुनः लकड़ी के सहारे खाँसता हुआ आगे बढ़ा।

'बच्ची भूख लगी है।'

'तो मैं क्या करूं?'

'कुछ खाने को दे।'

'क्या दिया कुछ नहीं है आगे बढ़ो।' चला है भीख मांगने इतनी बाप दादों की सम्पत्ति चिलम पर रख कर फूंक दी, भाई महेन्द्र-प्रताप की हत्या करके और उनकी स्त्री का सतीत्व बिगाड़ कर सम्पत्ति लेने पर भी पेट नहीं भरा। पेट है या कोई खन्दक है। मर क्यों नहीं जाता।' धिक्कारती हुई लड़की ने कहा।

काल भी तो हमें नहीं पूछता बच्ची।

पूछेगा कैसे ! जो किया है वह भोगेगा कौन ?

चुपचाप बुड्ढा पुनः जीभ से ओंठों को चाटता हुआ आगे बढ़ा। सोचता जाता था एक पैसा भी आज नहीं मिलेगा। एक पैसा भी मिल जाता तो दम लग जाता।

'इस बुड्ढे पर दया करो बाबू !'

'चलो दुनियाँ ऐसे ही खाए विना मर रही है रुपया रहते भी अन्न नहीं मिल रहा है चले हैं दया करवाने। विना चूँ-चाँ किये आगे बढ़ो।' एक किसान ने कहा।

दुम दवाए वुड्ढा पुनः आगे वढ़ा। निराश होकर वह एक पेड़ के जड़ पर छाया में वैठ गया सोचने लगाः—

हाय रे! समय! संसार में तू ही प्रवल है। एक समय था दरवाजे पर गाय-वैलों की कतारें वँधी रहती थीं। नौकर हर समय सेवा में लगे रहते थे। घर में धन की कमी न थी, सभी भाई एक जगह में बैठकर हँस-हँस कर बातें करते थे। किसी को भी हिम्मत नहीं होती थी कि कोई सिर उठावे, आज वही समय है कि सव लोग मिट्टी की गर्त में विलीन हैं केवल मेरे पाप के कारण। मैं सोचता था जो कुछ कर रहा हूँ उसे कोई नहीं देख रहा है। मनुष्य की आँख में धूल झोंककर मनुष्य जो चाहे सो करले लेकिन उस परम पिता की आँख में कोई धूल नहीं झोंक सकता। वह सव के छिपे से छिपे रहस्य को जानता है। उसके अनुसार उसे फल देता है मैंने भी तो वहुत पाप किया है उसका उद्धार क्या अभी हो सकता है? कदापि नहीं! मानव! तू संसार में यह सोचकर कोई पाप न कर कि कोई नहीं देख रहा हैः—

तू भ्रम में है इसकी शिक्षा तू मेरी दशा देखकर ले। मनोरमा जिसका कि मैंने लोक और परलोक दोनों बिगाड़ा, अगर वह हमें क्षमा कर देती तो मेरे पाप का अन्त हो जाता। और इस जीवन से मैं मुक्त भी हो जाता। लेकिन हाय! मैं उसे कहाँ पाऊँगा—

मनोरमा! मनोरमा बच्ची! प्रभा-प्रभा'''कहता हुआ वुड्ढा उसी छाया में बेहोश हो गया।

'क्यों अब पश्चाताप करता है उठ पहले ही सोचा होता तो ऐसी तुम्हारी दशा क्यों होती।' प्रताप की आत्मा ने धिक्कारा।

हाँ, कौन मुझे इस निर्जन में शिक्षा दे रहा है? चौंककर कमला-सिंह ने कहा।

'धीरज धर, मनोरमा और प्रभा तुझे मिलेगी।' आत्मा ने पुनः कहा।

'मिलेगी-मिलेगी'... कहता हुआ बुड्ढा उछल पड़ा।

'आप कौन हैं ?'

'यह लेकर क्या करेगा अपना काम देखो।' अलख आत्मा ने कड़क कर कहा।

बुड्ढे कमलासिंह पुनः गाँव की ओर चले। उन्हें आज तीन रोज़ भोजन किये हो गया था। उनके लिये बोलना भी दुर्लभ हो चला था। लाठी उठाकर बोले—

'शायद आज गाँव में किसी के यहाँ शादी है। चलें उसी जगह शायद भोजन मिल जाय। धूप भी बड़ी तेज़ है, पैर जल रहा है, जैसे आग में पड़ गया हो। चला भी नहीं जाता न मालूम अभी कितनी दूर है ?' बुड्ढे कमलासिंह ने मन ही मन कहा।

'कहाँ जा रहे हैं दादा !' गाँव से आते हुए एक आदमी ने पूछा।

'तू कौन है बच्चा।'

'एक राही।'

'कहाँ से आरहे हो ?'

'उसी गाँव से जहाँ जा रहे हो।'

'एक बात पूछूं बताओगे'

'क्या ?'

उस गाँव में किसी के बारात आई है।

'नहीं।'

'बाजा तो बज रहा है।' बुड्ढे ने कहा।

'यह बारात का बाजा नहीं है।'

'तब।'

सुरजू चमार की मृत्यु हो गई है। उसी की खुशी में उसके लड़के बाजे के साथ उसकी लाश ले जा रहे हैं।

'क्या मृत्यु पर भी बाजा बजता है ?'

'क्यों नहीं, जो अपने सत्य और धर्म से काम करता है, पूरी आयु भोगकर अच्छी मृत्यु पाता है उसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं। उसके लड़के उसी भाँति उत्सव मनाते हैं जैसा उसकी शादी में हुआ रहता था, राही ने उत्तर दिया ? बुड्ढा थोड़ी देर के लिये चुप हो गया। सोचने लगा एक वृद्ध वह है जिसकी मृत्यु पर भी बाजा बज रहा है, उसके जीवन में उसे कितना सुख रहा होगा और एक वृद्ध मैं हूँ कि जीवन होते हुये भी दाने दाने के लिये दर दर की ठोकरें खा रहा हूँ। आज चार दिन पेट में अन्न गये हुआ। इतना कहते-कहते बुड्ढे की आँखों में आँसू की बूँदें झलक उठीं।

'तब जाना बेकार होगा। बच्चा!'

'हाँ दादा!'

लाठी रखकर बुड्ढा जमीन पर बैठ गया। सोचने लगा अपने दुर्दिन के सम्बन्ध में। अब तो जान निकल जाती तो अच्छा होता। लेकिन यह पापी कैसे निकलेगी, निकलेगी अवश्य, लेकिन मेरी दुर्दशा हो जाने पर।

'सत्य है, विपत्ति में परछाहीं भी साथ छोड़ देती है।' उदासीन भाव से बुड्ढे ने कहा।

'अच्छा, बच्चा ! मुझे किसी पेड़ की छाया में बिठा दे।'

पेड़ की छाया में बैठे-बैठे बुड्ढे को शाम हो गई। उस दिन भी भोजन न मिला। बैठा-बैठा कलप रहा था। उसका जर्जर अस्थि पिंचर हिल रहा था, दन्तहीन मुख से कुछ कह कह कर विलाप कर रहा था। रह रह कर वह अपने हाथ पैर पर की बैठी हुई मक्खियों को भी हाँक लेता था, यह विपत्ति की अन्तिम सीढ़ी थी, उसके हाथ पैर की उगलियाँ कुष्ट रोग के कारण गिर गई थी।

'उठिये दादा!' कमलासिंह के पड़ोसी मुखिया साहब के लड़के ने कहा—

'कौन है ? बच्चा!'

'रांम खेलावन ।'

'कहाँ से आ रहा है ? बच्चा !'

'जरा भोला अहीर के यहाँ गया था। माया की शादी होने वाली है उससे दूध के लिये कहने गया था।'

क्या माया की ? आशाभरी वाणी से बुड्ढे ने कहा।

'हाँ।'

'कब है ?'

'कल ही है।'

'चलिये हमारे यहाँ आपको निमंत्रण है। बाबू जी ने कहा है कि जहाँ से भी मिले अपने दादा को लिवा लाना। संयोग रहा कि आप रास्ते में ही मिल गये। एक पंथ दो काज हो गया। नहीं तो काफी भटकना पड़ता।'

'मुखिया साहब हमारे बड़े दिली दोस्त हैं, वे बड़े ही नेक आदमी हैं। उनके बराबर गोरी गाँव में कोई भी नेक और प्रतिष्ठित आदमी नहीं है।' लकड़ी के सहारे धीरे धीरे गाँव की ओर आते हुये बुड्ढे कमलासिंह ने कहा।

बुड्ढे कमलासिंह ने सोचा अगर चापलूसी न करूं तो शायद आज भी भोजन न मिले।

'अभी कितनी दूर है बच्चा !'

'बस, अब मुश्किल से दस कदम होगा दादा ।'

× × ×

'कहाँ चले गये थे ? भाई साहब !' हाथ में हाथ लेते हुये मुखिया साहब ने पूछा।

कहाँ जाऊँ भाई साहब ! आंखों में आँसू भर कर बुड्ढे ने कहा।

'क्या बात है ?'

'आप तो सब जानते हैं भाई साहब फिर'...।

धीरज धरिये दुःख-सुख मनुष्य पर ही पड़ता है भाई साहब ! कहा भी गया है कि—

गिरते हैं शसवार ही मैदाने जंग में।
'वह तिफ़्ल क्या गिरेंगे जो घुटनों के बल चलें ॥'

'भाई साहब ! अपनी विपत्ति मैं क्या आप से कहूँ !'

'वह तो आप की दशा ही बता रही है।' मुखिया साहब सहानुभूति दिखाते हुये बोले।

'आज चार दिन हो गया भोजन किये। कह कर बुड्ढा रोने लगा।

राम खेलावन...राम खेलावन...।

'हाँ बाबू जी।'

'जरा अपने दादा को भोजन कराओ।'

'अच्छा।'

बात सुनते ही कमलासिंह के मुख में पानी भर आया, जीभ चटपटाने लगे, अब एक एक मिनट एक एक वर्ष के समान प्रतीत होने लगा।

चलिये दादा !

अच्छा बच्चा !

जल्दी से बूढ़ा लाठी लेकर काँपता हुआ उठ खड़ा हुआ। राम खेलावन ने उन्हें दालान में बिठाकर एक पत्तल पर सभी सामान ठीक करके ला रखे। अब क्या कहना था देखते ही देखते बूढ़ा सारे भोजन पर हाथ फेर कर बैठ गया। और आने की प्रतीक्षा करने लगा।

'और चाहिये दादा !'

'थोड़ा और बच्चा !'

राम खेलावन ने पुनः उतना ही भोजन लाकर पत्तल पर रख दिया। पुनः पलक फेरते ही पूरा पत्तल साफ़ कर दिया। सच ही है 'गरीबी में पेट भी भारी हो जाता है।'

'अब नहीं चाहिये बच्चा!'

बूढ़ा उठकर अपनी जगह आकर पकी मूछों पर हाथ फेरने लगा। अब उन्हें एक ही काम शेष रहा, अपने गले हुये हाथ पैर की मक्खियाँ उड़ाना।

चाचा जी माया की शादी में सभी सामान तो ठीक हो गया केवल एक चीज़ ठीक करना बाकी है।

'वह क्या है?'

'वह आप ही के ऊपर लोगों ने छोड़ा है।'

'भला सुनने तो पाऊँ।'

'नाच' चाचा जी!'

'तो किसका नाच ठीक किया जाय, भाण्डों का या नर्तकी का' चचा ने पूछा।

'लोगों का तो विचार है नर्तकी ही ठीक होगी।'

'तो यह भी समझ लेना चाहिये कि कितने रुपये तक?'

'इसमें क्या समझना है। क्या फिर माया की शादी करूँगा। नाच एक नम्बर का होना चाहिये चाहे जितना रुपया लगे।'

क्यों भैया तुम्हीं बताओ कि किसका नाच ठीक होगा? चचा जी ने अपने रिश्तेदार से पूछा।

'हमारे यहाँ एक बार एक जमींदार की लड़की की शादी थी। उसमें एक नर्तकी नाचने के लिये आई थी उसके बराबर तो अभी कैसा नाच नहीं देखा। उसकी जवान बुड्ढे सभी तारीफ कर रहे थे और रह रह कर उसका नाम भी ले लेते थे।' चचा जी के सम्बन्धी ने कहा।

'तो उसका क्या नाम था?'

'हुस्ना।'

'मैं उसका घर भी जानता।'

'नाच ठीक करने के लिये काशी कौन कौन जायँगे।' चचा जी ने कहा।

'अच्छा, केशव ! हम तुम ही चलेंगे।'

× × ×

'सेठजी, बता सकते हैं कि प्रभा नर्तकी कहाँ रहती है ?'

'कहिये क्या आज्ञा है ! मित्रवर !

'जरा उससे मिलना है'

'क्या बुढ़ाई में भी मिलियेगा भाई साहब !' मजाक करते हुये सेठजी ने कहा।

'नहीं, भाई शादी पड़ी है।'

'बहुत अच्छा, किसकी ? सेठ जी ने पूछा।

'छोटी लड़की माया की।'

'कहाँ ठीक हुई है ?'

'गोरी गाँव में मुखिया गणेशसिंह के यहाँ।'

कहिये उसका नाच कैसा है ? सेठ जी।

क्या उसके सम्बन्ध में पूछना है। उसके सम्बन्ध में तो आप काशी के बच्चे बच्चे से पूछ सकते हैं। तारीफ करते हुये सेठ जी ने कहा।

'अच्छा, चलिये हम लोगों को शाम की गाड़ी से घर भी लौटना है।' चचा जी ने कहा।

'आज रुक जाइये शाम को प्रभा का नाच भी देख लीजिये।'

'सेठजी ! मौका नहीं है नहीं तो······।

'संभल कर आइयेगा चचाजी ! सीढ़ी बड़ी खड़ी है।' सेठजी ने चचाजी को सचेत किया।

'अच्छा।'

प्रभा···प्रभा···प्रभा···सेठजी ने पुकारा।

'कौन है ?'

'जरा दरवाज़ा खोलो।' धीमे से सेठजी ने कहा।

आइये सेठजी ! प्रभा ने कहा

'दो आदमी और हैं।'

'आने दीजिये कोई हर्ज नहीं; प्रभा ने कहा।

तीनों आदमी तकिये के सहारे पूरब को मुख करके बैठ गये। उसकी सुन्दरता को देखकर केशव अवाक् रह गया। चचाजी भी एक टक उसके मुख की ओर देखने लगे।

'कहिये क्या आज्ञा है ?' पान हाथ में देती हुई प्रभा ने पूछा।

'ये लोग आपका नाच तय करना चाहते हैं।'

'अच्छा, अम्मा ?'

'हाँ बेटी।' ऊपर के तल्ले पर भोजन पकाती हुई मनोरमा ने कहा।

'जरा नीचे आ।'

'कहिये कैसे दर्शन हुआ।' मीठी आवाज में बूढ़ी मनोरमा ने कहा।

'ये लोग नाच तय करने के लिये आये हैं।' सेठजी ने कहा।

'तब आप तो हैं ही।'

'कहो कितना होगा।'

'आप तो जानते ही हैं।'

'कुछ बताओ तो।'

'चार सौ रुपये।'

'ठीक ठीक कहो मनोरमा।'

'मैंने तो ठीक ठीक कह दिया सेठजी।'

'अच्छा आप ही वाजिब समझ कर कहिये।'

'एक हजार रुपया।'

'और आपने कह दिया तो ठीक ही है।'

एक हजार रुपये पर प्रभा के नाच की तिथि पक्की हो गई।

'चलिये अब चला जाय।' सेठजी ने कहा।

'चलिये।'

तीनों आदमी प्रभा के कोठे पर से उतर पड़े। आपस में बातें करते हुये घर की ओर चल दिए।

× × ×

'भाई गोपाल! नाच देखने चलोगे।' वृद्ध चरवाहे ने कहा।

'कहाँ है यार।'

'गोरी गाँव।'

'किसके यहाँ?'

'मुखिया साहब की लड़की की शादी है।

'तब तो ज़रूर चलूँगा।'

'किसका नाच है।'

'नर्तकी का।'

'दौड़ चलो शायद नाच शुरू हो गया है।'

प्रभा द्वार पूजा के दृश्य को देखकर थोड़ी देर के लिये मौन हो गई। सोचने लगी कौन जानता है कि मैं भी इसी गाँव की लड़की हूँ। अगर मेरे पिता जी भी होते तो मेरा भी इसी प्रकार ब्याह होता, मुझे भी लेने के लिये कोई धूमधाम से आता। एक समय था जब मैं झूठी गुड़ियों की शादी कराती थी। उस समय क्या मुझे इसका ज्ञान था कि इस समय तो मैं झूठी गुड़ियों की शादी करा रही हूं लेकिन एक समय आवेगा कि मेरी ही शादी न होने पावेगी। रुपये पर मुझे अपना नाच बेचना होगा। यही सखी माया है जिसके साथ मैं मेला देखने गई थी और पैसे के लिये रो रही थी, उस समय विमला नर्तकी के नाच को देखकर मेरी भावना भी उसी प्रकार हो गई थी, वह आज इस स्थान पर सत्य रूप में है। अफसोस है कि मैं अपनी और सखियों

की शादी न देख सकी एक प्रकार से अच्छा ही हुआ कि न देख सकी। पश्चाताप से क्या ? मैंने तो रुपये को ही अपना पति बनाया है।

मनोरमा भी बैठी थी। वह भी अपने पहले के जीवन के सम्बन्ध में सोच रही थी, यही गाँव है जहाँ मैं प्रथम बार इस रूप में आई थी कि मुझे सूर्य की किरणें भी न देख पायी थी, पुनः पति विहाना में इस रूप में निकाली गई कि उस करुण समय को पशु पक्षी भी न देख सके थे, शायद वह पापी कुकर्मी कमला सिंह भी अपने कर्म का फल भोगता होगा। अच्छा होता कि मैं उस पापी को एक बार अपनी निगाह से देख लेती।

'अब तो नाच शुरू होना चाहिये।' चाचा साहब ने कहा—

सरंगी वाले ने स्वर भरा। तबल्ची ने तान लगाई। प्रभा अपने कमलवत अरुण चरण की झनकार के साथ थिरक उठी। श्रोतागण के कानों में कलकल निनाद गूँज उठा। प्रभा ने तान छेड़ा—

काली रे बदरिया छाई, पिया परदेश छाये, रहा नहीं जाय।
बोलै कोइलिया प्यारी अमवा की डाली,
पिया बिन सूनी मेरी सेजिया निराली,
बोलता पपीहा प्यारा ! पिया की न याद आई। सहा नहीं जाय ॥टेक॥

जैसे हवा के झोके से लहराती खेती झूम उठती है उसी प्रकार प्रभा की स्वर लहरी में सभी श्रोतागण मस्ती में झूम उठे। वाह वाह की चारों ओर से झड़ी लग गई। नोटों की बण्डल जेब से निकल पड़े देखते ही देखते प्रभा की अंजुली नोटों से भर गई। जैसे चकोर चन्द्र के मुख मण्डल की ओर देखता है उसी प्रकार बुड्ढे बच्चे जवान सभी लोग प्रभा के मुख मण्डल की ओर देख रहे थे। केवल पुरुष ही नहीं औरतें भी प्रभा के गाने और नाच पर मुग्ध थीं। हतबुद्धि सी सभी खड़ी थीं किसी की भी दृष्टि उस ओर से न फिरती थी।

प्रभा एक बार पुनः तान पर थिरक उठी। हवा की गति भी मन्द पड़ गई उसके पायल की झनकार में उलझकर। पुनः गाने की तान मिलाई—

'चलो सखी ! यमुनाजल भरि लाईं।'

सारंगी और तबल्ची की तान एक में मिल कर गूँज उठी। सभी लोगों का मानस थिरक उठा प्रभा का नाच देख कर। सब लोग मंत्र मुग्ध से हो गये। सब लोग प्रभा की स्वर लहरी में हिलोरें लेने लगे।

'धन्य है प्रभा तेरी मां मनोरमा को जिसने ऐसा रत्न पैदा किया।' तारीफ करते हुये चचा जी ने कहा।

प्रभा और मनोरमा का नाम सुनते ही गोरी गाँव के सभी नर नारी अवाक् रह गये। एक टक उन दोनों की ओर देखने लगे। जहाँ लोग स्वर लहरी में हिलोरे ले रहे थे वहाँ अब लोग विस्मय के समुद्र में डूब गये। सब लोग आपस में काना फुसी करने लगे कि क्या वही मनोरमा तो नहीं है जिसका निर्वासन हुआ था और वही प्रभा तो नहीं है जो आज दस वर्ष हुये एकाएक गाँव से गायब हो गई। कोई प्रत्यक्ष रूप में कह नहीं पाता था। लोग पहचान भी नहीं पाते थे। छोटी प्रभा अब तरुणाई में झूम रही थी। तरुणी मनोरमा अब तरुणाई पार कर चुकी थी। उसके चर्म मांस को लोथड़ों के साथ लटक रहे थे, मुंह पर झुर्रियां पड़ गई थीं।

मनोरमा नाम की आवाज़ किसी प्रकार कमलासिंह के कान में पहुंची। बूढ़ा आश्चर्य में पड़ गया। उसे अपने दुःख के अन्त का समय करीब जान पड़ा। वह हर्ष में अपने को भूल गया।

मनोरमा! मनोरमा! प्रभा! प्रभा! कोढ़ी कमलासिंह आगे बढ़े उनकी लकुटी कहीं पड़ी थी। इस समय को देख कर भीड़ अवाक् रह गई।

अँगुली हीन कमलासिंह को आने के लिये तैयार देखकर भीड़ दोनों तरफ हट गई। एक पतली पगडण्डी बन गई उसी में से वे घुटनों

के बल चलते हुये उस स्थान पर पहुंच गये जहाँ मनोरमा और उसकी बेटी प्रभा बैठी थी।

'मनोरमा?'

'कौन है, दूर रह।'

'क्या भूल गई?' बिलखते हुये कमलासिंह ने कहा।

'दिल की चोट क्या भुलाई जा सकती है?' क्रोधावेश में मनोरमा ने कहा।

'एक प्रार्थना है।'

'कुछ नहीं पापी!' दूर हट, तुझसे बोलने में मेरे दिल का घाव बढ़ने लगता है। आज चला है प्रार्थना करने। प्रार्थना किसी इष्ट की करो।' कड़कड़ा कर मनोरमा ने कहा।

'किस की करूँ मनोरमा!'

'उसी सम्पत्ति की जिस के लिये तू ने महा अनर्थ किया। एक कुटुम्ब का नाश किया, क्रोध से जलती हुई मनोरमा ने कहा।

'सम्पत्ति तो चंचला है मनोरमा?'

यह तो मनुष्य समझता है काफी गवाँ कर। चुप रह।

कमलासिंह ओठ चाटते हुये अपनी जगह बैठ गये उन की पेशानी में पसीना चमक उठा। कांपते हुये पुनः बोले—

प्रभा...प्रभा!

'कहिये।'

'जरा बच्ची तू ही मेरी प्रार्थना सुन ले।'

'प्रार्थना किस कान से सुनूँ। यह कान तो विपत्ति की झनकार सुनते बहरे हो गये। और बोलूँ किस जिह्वा से। जीभ तो पापी पेट के लिये गाने के द्वारा रुपया कमाती इस तरह से फिर ही गई है।' प्रभा ने कहा।

कमलासिंह मक्खियों को उड़ाते उड़ाते बिलख बिलख कर रोने लगे।

ऐसी करुण दशा देखकर सभी दर्शकों की आँखो में आँसू की बूंदें चमक उठीं। केवल चार ही ऐसी आँखें थीं जिनमें आग की चिनगारियां निकल रही थीं वे थीं, मनोरमा और प्रभा की आँखें।

'क्यों रोता है पापी ! क्या पाप करते समय भी सोचा था कि अन्त कैसे बीतेगा ? तू तो सोचता था मैं सभी की आँखों में धूल झोंक रहा हूं लेकिन पापी ! तुझे पता नहीं की संसार की आंखों में तू भले ही धूल झोंक ले उस परम पिता परमात्मा की आँख में धूल नहीं झोंक सकता। क्या तू सोचता था नरक स्वर्ग कोई दूसरा देश है वह तो इसी पृथ्वी पर है पापी। मानव जीवन में ही नरक और स्वर्ग का सुख दुःख भोग कर संसार से चलता है ? धिक्कारती हुई प्रभा ने कहा।

'मेरे पाप का अन्त कब होगा बेटी !'

'उसे भगवान ही जानते हैं।'

'नहीं, बेटी मेरे पाप का अन्त तुम्हीं जानती हो।'

'तुम्हें कैसे पता है !'

'अलख रूप में किसी ने हमें बताया है।

'वह कौन ?' प्रभा ने पूछा।

जिसकी इस पापी ने हत्या की है बेटी ! कड़ककर मनोरमा ने कहा।

कमलासिंह बार बार प्रभा और मनोरमा के पैर पर सिर पटकते थे और क्षमा-याचना करते थे। सारी भीड़ यह तमाशा देख रही थी। सभी लोगों को मानो वे शिक्षा दे रहे थे कि मनुष्य ! संसार में कुकर्म करने के पहले मेरी इस दशा को देखले वह अपने सत्कर्म और दुष्कर्म का फल दूसरे जन्म के भ्रम में—उसे तो अपने कर्म का फल इसी जन्म में किसी न किसी रूप में भोग कर जाना होगा। नरक और स्वर्ग भी इसी पृथ्वी पर है।

माँ ! क्या होना चाहिये ? प्रभा ने पूछा।

'बेटी, जैसा उचित समझो ।'

'माँ, तेरे द्वारा ही इनके पाप का अन्त हो सकता है ।'

'इनकी क्या याचना है ?' मनोरमा ने प्रसन्न मन से पूछा ।

'क्षमा ।'

कर दे क्षमा बिटिआ । इस पापी ने देख लिया । संसार के सत्कर्म और दुष्कर्म का फल ।

'क्षमा ।' प्रभा ने मुसकराते हुये कहा ।

कमलासिंह के मुख से निकल पड़ा—

'प्रभा ।'

दादा ! धीमे स्वर में प्रभा ने कहा ।

कमला सिंह मनोरमा के पैर पर गिर पड़े । देखते उनके जीवन में परिवर्तन हो गया उनके मुख से पुनः निकला—

'प्रभा !' कहते कहते बूढ़ा दुनियां से चल बसा । 'शुभ में ही अशुभ का बीज छिपा है ।' यकायक प्रभा के मुख से निकल पड़ा ।

'यही है पाप का प्रायश्चित ।' सबके सम्मुख हाथ जोड़ कर मनोरमा ने कहा ।

बारात बिदा हो गई । सब लोग अपने स्थान को चले गये ।

१३

'आज तो मैंने बड़ा ही विचित्र स्वप्न देखा है प्रभा।'

'भला सुनूँ तो माँ!'

'नहीं बताऊँगी।'

'क्यों ?'

सत्य तो होगा नहीं। केवल कहना ही रह जायगा। हँसोगी बिटिया मेरी नादानी पर।

'मां! यथाशक्ति उस को सत्य रूप देने का प्रयास करूँगी।'

बेटी, वह ऐसी वैसी बात नहीं है उसके सत्य होने में चार हजार रुपया लगेगा।

'तो इससे क्या ?' प्रभा ने कहा।

स्वप्न क्या था मेरे जीवन का स्वर्णयुग था। मैंने अपने को स्वप्न की सुकोमल डोर में ऐसे स्थान पर झूलते हुए पाया जहाँ आनन्द ही आनन्द था।

'वह क्या था ?' धीमे से प्रभा ने पूछा।

जैसे कोई आश्रम है, वहाँ पर तरह तरह के दस्तकारी के काम हो रहे हैं, नाना प्रकार की सुन्दर सुन्दर वस्तुयें बनायी जा रही हैं। उस में लोग अपनी हार्दिक प्रेरणा से काम कर रहे हैं। इसका सर्वाधिकार मेरे ही हाथ में है लोग मेरे ही अधीन होकर काम कर रहे हैं ? मुसकराती हुई मनोरमा ने कहा।

तो माँ! क्या आपकी भी आश्रम खोलने की इच्छा है? प्रभा ने पूछा।

हाँ बच्ची! अब मेरे धीरे धीरे चौथा पन भी आगया विचार है। कुछऐसा काम करूँ जिससे लोक और परलोक दोनों बने। मैं सोचती हूं गरीबों और असहायों की सेवा से बढ़कर और कोई काम इसके लिये उपयुक्त नहीं हैं।

'तो कहाँ खोलने का विचार हैं माँ।'

'जहाँ तुम्हारी राय हो बेटी!'

माँ तुम्हें ही तो उसमें काम करना है जहाँ तुम्हें सुविधा हो।

'बेटी! मेरा विचार है कि मैं अपना अन्तिम समय देहात में बिताऊँ।'

'तो गोपालपुर में खोला जाय।'

बहुत अच्छा होगा बेटी! दन्तहीन मुख से मनोरमा ने स्वीकृति दी।

× × ×

बच्ची कीर्तिलता! इस समय मेरे आश्रम में सौ असहाय लड़कियाँ काम कर रही है उन्हें अच्छा वेतन भी मिल रहा है, अगर तुम्हारा भी विचार हो तो पचास रुपये पर तुम भी काम कर सकती हो।' आश्रम की स्वामिनी मनोरमा ने कहा।

खैर ठीक है दादी! बेकार से बेगार भला।

'तो उसमें क्या होता है दादी?'

इसमें रचनात्मक काम होता है। सब लड़कियों को दस्तकारी का काम सिखाया जाता है। स्वयं हाथ की बनी चीजें बाजार में बिकती हैं। उससे जो आमदनी होती है उसी से सब लोगों का पालन पोषण होता है। उसी से आश्रम की वृद्धि भी होती है।

'तो काम करने वाली लड़कियाँ यहीं रहती भी होंगी?'

हाँ, सबके रहने के लिये उचित प्रबन्ध है। वह जो सामने लाल रंग का मकान है उसी में सब रहती हैं। क्या तुम भी इस जगह रहना चाहती हो?

'हाँ दादी ! मेरा भी यही विचार है।'

'तो क्या हानि है। यह छोटी बच्ची भी यहीं रहेगी ?'

'इसको भी इसी काम में लगाने का विचार है दादी। क्योंकि मैंने इस आश्रम की बहुत प्रसिद्धि सुनी है। यहाँ पर रह जाने से यह गुणवती कन्या हो जावगी।' कीर्तिलता ने कहा।

मनोरमा अपने काम की सफलता को सुनकर प्रसन्ता में विभोर हो उठी और बोली—

'बहुत अच्छा होगा बेटी !

× × ×

दादी मुझे एक हजार लकड़ी के खिलौने चाहियें।'

'अभी मिले, कहो कहाँ से आ रही हो ? मनोरमा ने पूछा।

'मैं तो दिल्ली से आ रही हूँ दादी।'

प्रेमा···प्रेमा···प्रेमा !···।

पहुँची दादी !

'जरा जल्दी करो।'

'क्या है ?'

देख बिटिया को एक हजार लकड़ी के खिलौने चाहियें। जल्दी बक्स में बन्द करके दे दे।

अच्छा कहती हुई प्रेमा खिलौने को बक्स में बन्द करने लगी।

कुछ दिन बाद प्रेमा ! प्रेमा ! प्रेमा ! घबड़ायी हुई कीर्तिलता ने पुकारा।

'क्या है ! चुड़ैल ! बक बक करती है। सोने में खलल डाल रही है।'

'जल्दी यहाँ आ।'

'वहाँ क्या है ?'

'जरा दादी की दशा देख।'

प्रेमा की निद्रा दूर भाग गई वह दौड़ी हुई दादी के पास पहुँची।

दादी ! दादी प्रेमा ने पुकारा

देख प्रेमा ! शायद वे किसी को बुला रही हैं।

'ये तो प्रभा को बुला रही हैं।'

'कौन प्रभा ?'

'इनकी लड़की है वह काशी में रहती है।'

तब तो काफी दूर है इतनी जल्दी वह बुलाई नहीं जा सकती। कीर्तिलता ने कहा।

'तब।'

'जरा दादी को पानी पिला दे।'

प्रेमा ! गिलास में पानी लेकर दादी के पास में खड़ी होकर बोली--

'दादी।' मनोरमा ने आँख खोलकर देखा गला बिलकुल रुद्ध हो गया था बोल न सकी।

हिंचकियाँ चल रही थी कुछ कहना चाहती थी कह न पाती थी। एक ऊँची साँस के साथ मुख से अनायास निकल पड़ा—

'प्रभा।'

और बूढ़ी दादी सर्वदा के लिये दुनिया से चल बसी।

समाज ने जिसके प्राणों की बलि ले ली, वही आश्रम का निर्माण करके उसके लिए एक आदर्श शिक्षा देकर चल दी। समाज उसे खोकर रोता है चीखता है। दूर कभी पूर्व और कभी पश्चिम में पक्षी प्रातः सायं उसी के गीत गाते हैं।

※ समाप्त ※